हमारा साहित्य
2023

संपादक
डॉ. रत्न बसोत्रा
सह संपादक
यशपाल निर्मल

जे.एंड के. अकैडमी आफ, आर्ट,कल्चर एंड लैंग्वेजज़, जम्मू

HAMARA SAHITYA
2023

(A Collection of Articles based on Literary Criticism)

Edited by
Dr. Rattan Basotra
Yashpaul Nirmal

© जे एंड के अकैडमी ऑफ आर्ट, कल्चर एंड लैंग्वेजिज़

''हमारा साहित्य'' में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं। इन से जे. एंड के. अकैडमी ऑफ आर्ट, कल्चर एंड लैंग्वेजिज़ का सहमत होना अनिवार्य नहीं है।

प्रकाशक : सचिव, जे एंड के अकैडमी ऑफ आर्ट, कल्चर एंड लैंग्वेजिज़, कैनाल रोड़, जम्मू–180001
फोन : 2542640, 2577643, 2579576
पत्र–व्यवहार : संपादक हिन्दी, जे एंड के अकैडमी ऑफ आर्ट, कल्चर एंड लैंग्वेजिज़, कैनाल रोड़, जम्मू–180001
प्रथम संस्करण : 200 प्रतियां
प्रकाशन वर्ष : 2023
मुद्रक : गवर्नमेंट रणबीर प्रैस, जम्मू
मूल्य : 170/–

संपादकीय

आलोचना अथवा समालोचना साहित्य की एक सशक्त और कठिन विधा है। एक सच्चे और निष्पक्ष आलोचक का कार्य तलवार की धार पर चलने जैसा होता है। दूसरे शब्दों में कहें तो यह कार्य एक सच्चे जज की भांति है। यदि एक सच्चा आलोचक कबीर की इन पंक्तियों :–

''कबीरा खड़ा बाजार में, मांगे सब की खैर।
ना काहू से दोस्ती, ना काहू से बैर।।''

को आदर्श मान कर आलोचना के कार्य को हाथ में ले तो वह आलोच्य कुति की सही और निष्पक्ष आलोचना कर सकता है। आलोचक के लिए यह आवश्यक है कि वह किसी भी रचना को पूरी तरह समझने के लिए उस जीवन की गहराई को मापे, यहां से लेखक की भाव भूमि आरंभ होती है। इसलिए भाषा रूपी कसौटी के स्थान पर अनुभव की प्रमाणिकता को छूने के लिए प्रतीकों या बिम्बों की नहीं अपितु चरित्र निमार्ण की योग्यता, कथवस्तु और संघटन–शक्ति का विश्लेशन ही समीक्षा के लिए महत्वपूर्ण होता है। इसीलिए जैसी भाषा का प्रयोग आलोचक करता है वह काव्यात्मक भाषा से भिन्न होती है।

आलोचक भाव और अनुभव को रूप देकर कड़वे सत्य तक पंहुचने और उसे अधिक स्पष्ट करने के लिए कभी–कभार नये शब्दों का निमार्ण भी करता है जो कई बार साधारण पाठक के लिए कठिन होते हैं। इस लिए आलोचक को उस भाषा या उन शब्दों का प्रयोग करना चाहिए जो आम पाठक तक सहजता से पंहुच जाएं। आज आलोचना का तरीका बदल रहा है। आज का आलोचक सच्चाइयों पर से आवरण हटाने की ओर पग बढ़ा रहा है। वह मनुष्य को सामाजिक विकास के संदर्भ में रख कर लगातार बदलने वाली सामाजिक सच्चाइयों को देखने का और साहित्य के

मर्म को समझने का यत्न करता है। देखा जाए तो साहित्य व्यापक अर्थ में मानव जीवन की गूढ़ व्याख्या है।

आलोचना का इतिहास भी काफी पुराना है, जब से साहित्य सृजन आरंभ हुआ है तब से ही आलोचना कार्य भी प्रारम्भ हो गया है। आलोचना द्वारा कृति में सुधार की संभावना बढ़ जाती है। हम यह भी अनुभव करते हैं कि जिस मात्रा में साहित्य का सृजन हो रहा है उस मात्रा में संपूर्ण साहित्य को पढ़ पाना भी संभव नहीं है। इस कार्य में आलोचना या समीक्षा पाठक की बहुत मदद करती है। कई बार पाठक किसी कृति की आलोचना पढ़ कर ही संतुष्ट हो जाता है और कंई बार समीक्षा पढ़ कर इतना प्रभावित हो जाता है कि वह आलोच्य पुस्तक को पढ़ने के लिए विवश हो जाता है।

आलोचना के इसी महत्व को दृष्टि में रखकर हमारा साहित्य का प्रस्तुत अंक साहित्य आलोचना पर प्रकाशित करने का निर्णय अकैडमी ने लिया है। हम अपने इस प्रयास में कितने सफल रहे हैं, इसका पता हमें आप की प्रतिक्रिया से चलेगा। अतः हमें आप की प्रतिक्रिया और सुझावों की प्रतीक्षा रहेगी।

डॉ. रत्न बसोत्रा
संपादक

विषय सूची

1. वेदपाल दीप : हिन्दी कविता को समर्पित एक दिग्गज कवि / डॉ. ओम गोस्वामी / 6
2. दलित साहित्य की अंतर्वस्तु / प्रो.राजकुमार/35
3. कश्मीरी काव्य में आध्यात्मिक विचारधारा / बाल कृष्ण 'संन्यासी' / 54
4. भाषा चिंतन और रामविलास शर्मा / ओम निश्चल / 64
5. लदाख में भोटी भाषा तथा साहित्य का विकास / डॉ .प्रदीप कुमार दास/72
6. कश्मीर का गौरव ग्रंथ राजतरंगिणी : / गौरीशंकर वैश्य विनम्र /92
7. चाबुक सी बजती घड़ी के सामने : एक मूलत : कवि / कमलजीत चौधरी /102
8. हिन्दी सूफी साहित्य में प्रेम के विविध पक्ष / प्रवीण कुमार सहगल /119
9. हिंदी ग़ज़ल में राष्ट्रीय चेतना / डॉ. बवीता श्रीवास्तव / 128
10. बाल साहित्य का परिदृश्य / दिनेश प्रताप सिंह 'चित्रेश' / 139
11. साहित्य सृजन और समालोचना का पारस्परिक संबंध / डॉ. अशोक कुमार 'मंगलेश'/146
12. प्रियप्रवास की राधा: एक अवलोकन / यशपाल निर्मल/157

वेदपाल दीप : हिन्दी कविता को समर्पित एक दिग्गज कवि

—डॉ. ओम गोस्वामी

राष्ट्रीय भावना की प्रतिफलक हिन्दी— बीसवीं सदी का तीसरा और चौथा दशक जम्मू में हिन्दी की जड़ को जमाने की दृष्टि से बेहद महत्वपूर्ण समयावधि है। जम्मू—कश्मीर में राजवाड़ाशाही का शासनतंत्र होने के कारण अंग्रेज़ों से स्वाधीनता पाने की बात करना अथवा उसकी क्रूर उपनिवेशवादी शक्ति के विरुद्ध आंदोलन में सम्मिलित होना प्रायः असंभव सी बात लगती थी। किंतु लोगों के हृदय में गुलामी के विरुद्ध प्राकृत आक्रोश विद्यमान था। ऐसे में देश के स्वाधीनता आंदोलन में हिन्दी की महत्वपूर्ण भूमिका मानी जाती थी। जम्मू—कश्मीर राज्य में हिन्दी राष्ट्रीय भावना का प्रतीक बनकर प्रविष्ट हुई थी। जम्मू में इसे आजादी की भावना के स्फुरण का अभिन्न अंग माना जाता था।

ऐसे वातावरण में हिन्दी भाषा का हितैषी तथा हिन्दी साहित्य का रसिया एक छोटा—सा पाठक वर्ग सामने आया। धीरे—धीरे हिन्दी की महत्ता बहुत बड़े वर्ग की समझ में आने लगी। महात्मा गांधी सरीखे प्रमुख राजनेता पहले से हिन्दी को राष्ट्रीय जोड़क के रूप में प्रस्तुत कर रहे थे। उधर जिस दौर में हिन्दी साहित्य के छायावादी कुहासे का भेदन करके आधुनिकता की किरणें प्रस्फुटित हो रहीं थीं—उस छायावादी प्रभाव से मुक्त कविता भी लिखी जाने लगी। प्रगतिवाद का समांतर निनाद हो रहा था। जम्मू के पढ़े लिखे लोग हिन्दी से जुड़कर गौरव का अनुभव करते थे।

वेदपाल दीप का आगमन इसी संक्रातिक काल खंड में हुआ जबकि राष्ट्र स्वाधीनता की अंगड़ाई लेने को बेताब हो रहा था। युवावस्था से ही साहित्य के प्रति गंभीर निष्ठा से दीप ने हिन्दी में कविताएं लिखना आरंभ

किया। मूल रूप से वे राष्ट्रवादी विचारधारा के उन्नयक बनकर आगे बढ़े हालांकि उन्होंने छायावादी वैचारिकता से आच्छादित कविताएं भी लिखी।

राष्ट्रवादी चिंतन तथा गांधीवाद का प्रभाव–

वेदपाल दीप का कवि–व्यक्तित्व गढ़ने में उनकी माता के वात्सल्य और प्रेम का बड़ा महत्वपूर्ण स्थान है। अपने बड़े सुपुत्र वेदपनाल दीप पर माता की ममता उनके प्रोत्साहन के रूप में प्रकट होती रही। उन पर तनिक–सी गर्म हवा झूलने पर वे उनके समक्ष डट कर खड़ी हो जाती। सन् 1952 ई में लिखित अपनी कविता ''जननी'' से उन्होंने माता के प्रति आभार व्यक्त करते हुए लिखा–

''दिया जिसने ममता का दान,
प्रथम नारी थी तू माता।
मेरी भूलों पर मन तेरा,
अथाह स्नेह–अमृत छलकाता।।''

समय और परिस्थितियों ने उनके व्यक्तित्व के निमार्ण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। बचपन से किशोरावस्था के दौरान दीप की वैचारिकता कुछ–कुछ धार्मिक रंग में रंगी हुई थी। नाना श्री रघुनाथ दास शास्त्री नगर के प्रसिद्ध संस्कृत विद्वान थे। माता भी सुपठित स्त्री थी। तरुणाई के आरंभक वर्षों में दीप पर हिन्दी की छायावादी कविता का प्रबल प्रभाव पड़ा। यह प्रभाव इतना स्थिर था कि युवावस्था और तदुपरांत प्रौढ़ावस्था तक वे इसके प्रभाव से पूर्णतया बाहर न आ पाए।

हालांकि वे वामपंथी विचारधारा में रंग चुके थे तथापि काव्याभिव्यक्ति के समय यह छायावादी प्रभाव रह रह कर पंख फड़फड़ाने लगता। इससे पूर्व अपनी काव्य–यात्रा के आरंभिक वर्षों में उन पर तमाम विचारधाराओं का प्रभाव दिखाई पड़ता है। उन्होंने भारत की स्वतंत्रता तथा राष्ट्र – प्रेम को लेकर भी कुछ कविताएं लिखी। भगत सिंह के राष्ट्र हित में दिये गये बलिदान ने उन्हें बेहद प्रभावित किया। वे सुभाष चंद्र बोस की विचारधारा के भी समर्थक थे। उदाहरण देखें–

"परतंत्रता के बंधनों को,
किया पाश–पाश था।
देख जिसकी फौज को,
हिल उठा आकाश था।

सुन के जिसकी गर्जना,
इंगलैंड हुआ हताश था।
देश भक्त सपूत सैनिक,
नाम का सुभाष था।"

स्कूल से कालेज पंहुचते–पंहुचते वेदपाल दीप शिवाजी तथा राणा प्रताप जैसे महान योद्धाओं पर भी कविताएं लिख चुके थे। इस युवा कवि ने भारत–भूमि के वीर सपूतों का यशगान करती जो कविताएं लिखीं उनमें ''मुझ से मेरा देश न पूछो '' एक सराहनीय प्रयास था। इस में भारत का गौरव बढ़ाने वाले महापुरुषों के साथ–साथ सम्राट अकबर की नीतियों का गुणगान भी किया था।

दीप जी के चाचा श्री त्रिलोकीनाथ धर्मट्ट एक त्यागी वृत्ति के विद्वान थे। उनकी वैचारिकता ने दीप के अतिरिक्त इनके अन्य भाई – बहनों को भी प्रभावित किया। इतना ही नहीं, राष्ट्रवादी विचारधारा के लोगों का इनके घर आना–जाना था। यह तथ्य भी दीप के बौद्धिक उन्नयन में सहायक हुआ। यह विचित्र संयोग है कि कवि दीप ने आरंभ से ही धार्मिक संकीर्णता से दूरी बनाए रखी। उन्होंने हिन्दू सांप्रदायिकता तथा मुस्लिम फिर्काप्रस्ती के दृष्टिकोण को राष्ट्रीय एकता और मानवीय भाईचारे के उन्नयन में बाधक माना।

वस्तुतः यह प्रौढ़ दृष्टि उन्हें गांधीवाद के सम्पर्क से प्राप्त हुई। यहां यह कहना समीचीन होगा कि गांधीवाद से वे मानवतावाद की ओर बढ़े। तदनंतर वे विश्व–भातृभाव की विस्तृत विचारधारा की ओर आकृष्ट हुए। उन्हें लगा विश्व–शांति का एकमात्र दर्शन है ''साम्यवाद'' जिसे वे विश्श्व–क्रांति का सूत्र मान कर उस की राह पर चल पढ़े। उस दौर में

यह प्रथा थी कि कवि लोग अपने हृदय की तड़प छायावादी रूपकों और प्रतीकों के माध्यम से प्रकट कर रहे थे। दीप ने भी भारत गौरव को बखानते हुए लिखा–

''बना हुआ प्रताप का जिसके,
मैदानों में दुर्ग सबल है।
कुतब–मिनारा जिस भूमि पर,
सदियों से खड़ा अटल है।

लाल किला है गौरव जिसका,
उस अकबर का संदेश न पूछो।
मुझ से मेरा देश न पूछो.....''

आगे चलकार वेदपाल दीप गांधीवाद के प्रभाव में चले आए। महात्मा गांधी की विचारधारा भारत के बे–सहारा लोगों के हृदय में आशा की किरण बन कर प्रज्जवलित हो रही थी। अंततः राष्ट्र स्वाधीन हुआ। किंतु 30 जनवरी 1948 ई. के दिन राष्ट्रपिता की जघन्य हत्या ने इस स्वतंत्र राष्ट्र की खुशियों को निराशा में डुबो दिया।

इस जघन्य–कांड ने दीप के युवा हृदय को आघत पंहुचाया। अगले दिन साईंस कालेज के प्रांगण में शोकांजलि अर्पित करने के लिए एकत्र हुए छात्रों एवं अध्यापक समुदाय ने भीगी आंखों से दिवंगत बापू को स्मरण किया। इस अवसर पर दीप को श्रद्धांजलि भेंट करने को कहा गया तो उन्होंने शोकाकुल मनःस्थिति में यह काव्यांजलि प्रस्तुत की–

''बापू को किसने मारा?''
''मैंने''–कहती सांप्रदायिक विचारधारा।
''किसने बापू के सीने में मारी गोली?''
''मैंने'' – दो कौमों की थ्यूरी बोली।
बापू तेरी कातिल फिरकाप्रस्ती,
और उसकी ज़हरीली हस्ती।

जिसें मिटाने की कॉलेज से,
हम सब तुलबा ने है ठानी।
इस कॉलेज के पत्थर भी,
तेरे महाशोक में खोए।
हमें सहारा देने वाले अध्यापक,
बच्चों की भंति रोए।
सुनो तुम गहरी निद्रा में,
बे–सुध होकर सोए।
आंखें खोलो, देखो–
रोने–धोने, पछताने से
चेतना हम में है आई
जिसको लाने तुमने,
नवाखली, कलकता, दिल्ली की–
जराजीर्ण–वय में मिट्टी छानी।
हम करते हैं प्रण
कर देंगे सब अपर्ण।
तन–मन–धन, जीवन,
उस ध्येय को पूरा करने में
जिसकी खातिर तुम को थी, हाय
पड़ी छाती में गोली खानी।।"

इस कविता में युवा कवि हृदय की खीज और बे–बसी के अतिरिक्त उसकी राष्ट्रपिता के प्रति निष्ठा भी स्पष्ट होती है। वह जानता है सांप्रदायिकता की दो–राष्ट्र थ्यूरी ने लोगों को विष के सरोवर में डुबो दिया है। बापू की हत्या की दोषी यही सांप्रदायिक मानसिकता है। इस आघात ने कवि की वैचारिकता को एकाएक प्रौढ़ बना डाला। यह घटना दीप की सांप्रदायिक दलों से दूरी बढ़ाने का स्पष्ट बिंदू बनी। वे स्वयं को सरे–आम महात्मा गांधी का प्रशंसक और अनुयाई कहने लगे। कुछ दिन तो वे गांधी टोपी पहन कर कालेज जाते रहे।

इन्हीं दिनों उन्होंने ''बापू के कपूत'' शीर्षक कविता पुस्तिका के रूप में छपवा कर सांप्रदायिक शक्तियों से दूरी बढ़ा ली। दीप साहब के कथनानुसार 1951 ई. तक अर्थात् स्वाधीनता के दो–तीन वर्षों तक वे गांधीवाद के जादुई पाश में बंधे रहे। अहिंसा द्वारा स्वतंत्रता का उपहार लाने का चमत्कार उनकी युवा बुद्धि में गहरे बैठ गया था। इस वैचारिकता पर उन्होंने एकाधिक कविताओं की रचना भी की। गांधीवाद के संपर्क में आकर उनकी धर्म–निर्पेक्ष वैचारिकता को दृढ़ आधार मिला। ''दो–भाई'' शीर्षक हिन्दी कविता में उन्होंने सरहदी गांधी खान अब्दुल गफ्फार खान और जवाहर लाल नेहरू का वर्णन दो भाई कह कर किया–

''दो भाई थे बड़े बहादुर,
आज़ादी के मतवाले।

चले स्वाधीनता के पथ पर,
बाहों में बाहें डाले।''

इन दोनों नेताओं का प्रेरणा पुंज थे महात्मा गांधी। ये दोनों नेता व्यवस्था की असफलता और सांप्रदायिकता से जूझते रहे। गांधीवाद का प्रमुख भाव है त्याग, स्थिरता, मानवतावाद, और परस्पर भाईचारा। दो भाई कविता के दो पद प्रस्तुत हैं–

''एक सरहदी गांधी कहलाकर,
बापू की तस्वीर बना।
एक हकूमत का मुखिया होकर,
नेहरू जैसा वीर बना।''
''बड़े भाई ने छोटे को,
खुद से था बड़ा बनाया।
स्वाधीनता के हेतु दोनों ने,
मिलकर गीत था गाया।''

युवावस्था में वेदपाल दीप विचारों की तरलता में जी रहे थे। यद्यपि गांधीवाद मानवतावाद को प्रश्रय देता था, किंतु दीप को लगा मानवता के तमाम दुःखों का मूल कारण समाज का वर्गों में बंटा होना है। उन्होंने देखा कुछ लोग जीवन में तमाम सुविधाएं भोग रहे हैं। जबकि बहुतेरे ऐसे हैं जिन्हें रोटी के भी लाले पड़े हुए हैं। मेहनतकश अलाभकारी स्थितियों में जी रहा है, जबकि शाहूकार तमाम सुखों और सुविधाओं को बटोर रहा है। एक वर्ग शोषित है तो दूसरा उसका जमकर शोषण कर रहा है। इन्हीं दिनों उनकी पहचान कामरेड धनवंतरी से हुई। समाज का समाजवादी चित्र कुछ–कुछ स्पष्ट होने लगा था।

उच्च शिक्षा के वर्ष – प्रखर बुद्धि और शानदार स्मृति के कारण अपने शैक्षिक जीवन में तेज़–तर्रार छात्र के रूप मे जाने जाते थे। अंग्रेजी पर उनका विशेष अधिकार था। इसलिए बी.ए. के पश्चात यह विचार उठा कि उन्हें अग्रेजी में एम.ए. करनी चाहिए। किंतु, वे हिन्दी में कविता लिखते थे और उनका सपना था हिन्दी कवि के रूप में स्थापित होना। एम.ए. अग्रेजी के प्रस्ताव को इसलिए अस्वीकार कर दिया गया क्योंकि महात्मा गांधी ने भारत में अंग्रेजी की भूमिका को अस्वीकार किया था। अंग्रेजों के जाने के पश्चात स्वतंत्र भारत में अंग्रेजी को भी जाना होगा। इस विचार के वशीभूत हिन्दी के उज्ज्वल भविष्य की कल्पना करते हुए निर्णय हुआ कि वे हिन्दी में ही स्नातकोत्तर की शिक्षा प्राप्त करेंगे। अतएव एम.ए. हिन्दी करने के लिए लखनऊ के लिए विदा हुए।

साम्यवाद अर्थात् विपल्व की वैचारिकता लखनउ प्रवास की दो वर्ष की अवधि वेदपाल दीप के जीवन में बेहद महत्वपूर्ण सिद्ध हुई। यहां भारत के सामाजिक जीवन की कटु सच्चाइयों और जहरीले तथ्यों से परिचित हुआ यहां उनका सामना नाचने वालियों, अस्मत–फरोशी के बजारों, झुग्गी–झोंपड़ी में दो वक़्त की रोटी के लिए तड़पते मानव पुत्रों से हुआ।

इन्हीं दिनों वे मार्क्सवादी विचारधारा के और निकट आए। कामरेड साथियों से उन्हें क्रांति की मशाल की रोशनी मिली। एम.ए. करके जम्मू

लौटे तो वैचारिक दृष्टि से वे पूरी तरह बदले हुए इंसान थे। यहां आकर उनके पैरों में भटकन भर गई।

क्रांति अर्थात् इंकलाब के स्वागत लिए वे निरंतर कार्य करते रहे। जीवन भर उन्होंने वामपंथी विचारधारा के लिए काम किया। कविता की धारा बह रही थी। मार्क्स और लेनिन की विचारधारा पर चलते हुए उनका परिचय माओत्से तुग द्वारा चीन में लाई क्रांति से हुआ। वे उसकी सफलता से उत्साहित होकर उसका वर्णन अपनी ''विपल्व'' शीर्षक कविता में यों करते हैं–

''थी चौथाई–जगत की आबादी
अफ्यून से बेहोश
बागी माऊ ने भर दी गर्मी,
खून में भर दिया जोश''

''कम्यूनिस्ट पार्टी ऑफ चाइना'' के अध्यक्ष का यह गुणगान तब का है जब चीन से भारत के रिश्ते बिगड़े न थे। यह हिन्दी–चीनी भाई–भाई के दौर से पहले की कविता है। कवि सन् 1948 ई. के चीन की साम्यवादी क्रांति को प्राचीन रूढ़ियों की सलाखों से निकलने वाले मधुर गीतों से तुलना करते हैं–

''और हिकमत के तराने
सीखचों से निकल कर
चीन के पीले मैदानों में हुए कुरबान
किसी कवि ने जीवन पर अर्पित–
रक्त बहाया दिया बलिदान।''

दुनिया विशेषतया भारत के तमाम राजनीतिक, ऐतिहासिक दुष्कृतियों एवं सांस्कृतिक रूढ़ियों का निदान ढूंढते हुए कवि दीप लेनिन की वैचारिकताा को मानवता की धरोहर मानते हैं। सोवियत संघ में शोषण

का समापन जिस क्रांति से हुआ उसका प्रतीक लेनिन है और वह भी कवि के समक्ष एक प्रेरणा पुंज है और वही बरबाद और शोषित मानवता की साम्यता और खुशहाली का प्रतीक है–

''खुशहाल जिंदगी की कला के
हाथों ने सजा दी
इस तरह लेनिन का जीवन
जो ऐसी भव्य कविता है
जिसे इंसानियत के अदब ने
महफूज़ रखा है।''

यहां इस क्रांतिपरक कविता ''विपल्व'' का सम्पूर्ण पाठ प्रस्तुत है, ताकि अध्येयता एवं शोधकर्ता इसे स्वयं परख सकें–

विपल्व

है सुहानी रात
गूंज रहे मेरे उच्छवास
छत पर लेटा हूं उदास
दूर विवाह वाले घर से
ढोलक की उठ रही आवाज़
स्वप्न आकाश में उड़ती
परि–लोक के गीतों का आभास
कंठों के मधुर सुरीले साज़
छत पर लेट कर
सुनता हूं ढोलक की आवाज़
अंगुलियों में सुलग रहा–

एक सिगरेट अनमना
कड़वाहट का जैसे झरना

अधकच्ची नींद का अहसास
चीते की हो खुली जैसे एक आंख
निंदियाई बेहोशी तितलियों की
तरह बोझिल आंखों पर सवार
मेरी आंखों में अंधेरा छा रहा है
हंस रहा नभ में हर इक तारा
तपती सड़कों पर घूमा हूं
दिन भर आवारा
मारा–मारा
इस दौलत की दुनिया में
कौन है किसका सहारा
घूमता दिन भर रहा हूं–
पिघली सड़कों पर आवारा।
तंग गलियों के गलियारे
जो खुलते हैं बड़े बाजारों में
बारजों की छाया में
गंदे नाले का भयानक शोर
और ऊपर रेडियो की फटी तान
सोचता हूं इसी भांति
क्यों बेसुरा जीवन का गान
इधर अनगिनत फावड़े वालों से भरे फुटपाथ
चंडियाए हाथ, झुलसे माथे–
जिंदगी एक दांव है–सौदा है
जो हमेशा ही रहा, आगे भी घाटे में रहेगा
भग्य का तेज़ सैलाब दरिया बन कर बहेगा
फट रहे कानों के परदे, चिल्ल–पों अपार
शोर क्या जीवन का पर्याय है ?
ह्रास लेना जिंदगी की मज़बूरी क्यों ?
सांस के दो धागों में लिपटी जिंदगी
बिक रही है कोड़ियों में–

एक बुढ़िया जिस के मुंह पर
है यौवन के ध्वंसावशेष
भागती रहती है पागल की तरह
वह चल सकती है जितना–
उतना खट लेती है रोज़
जिस दुकान से जितनी आवश्यकता हो
उठा लेती है स्वयं
मार खाती, खून अपना पोंछती,
नथुने फुलाती
थूक गटकती, आंखों में उमड़ते आंसू पीती
कव्वे उड़ रहे चिकों की आड़ में
होते है अस्मत के सौदे
कोख में ममता का बोझ ढोने की मज़बूरी
किसी गांव से बिकने आई
हिरणीली छोरी
सूंघ रही मरियल गाय–
ढेर कूड़े का सड़क किनारे
और कुत्ते के गले में है
पड़ी जंजीर सोने की
सांझ की वेला
नदी के एकांत छोर पर ढलता सूर्य
भेद रहा एकांत को भारी
मेघों का गर्जन
सभ्यता का शोर, घोर चारों ओर
सुन रहा हूं
सुन्न हो रहा मस्तिष्क
आतुरता से भरपूर
खलिश का दंश हृदय में गहरे
पी ली मैंने जहर की बूंदे

अमृत प्याली में
पश्चिम प्रकाश को लील चुका है
अंधियारा सिर से गुजर रहा है
मैं गुज़र के आया जिन गलियों से
उन में वर्गों का अंतराल
मुर्दनी की तरह पसरा पड़ा है
मेरे कदम बढ़ना चाहते हैं
उन घरौंदों की ओर
जहां जीवन गला–सड़ा है
और शोषण है घनघोर

आज मेरी प्रेरणा का स्रोत
मिट्टी से सना–मानव का धड़
अहो! लोहार की हर चोट
मेरी अभिलाषाओं को कुचलती है
जख्म सीने के, मोची सी रहा है
चीरता है बढ़ई
आरी से मेरे मस्तिष्क की शिराएं
मैं बनाना चाहता हूं चित्र अनूठा
अग्नि की तूलिका से

विपल्व के रंग से
लाल–लाल दो आंखें
सतत् प्रस्ववेद माथे से चूए
आंसू बहें, उफ तक न हो
गीत मेरे कंठ से फूटें कि जैसे
फूट पड़ती है पसीने की गर्म बूंद
कुली के जिस्म पर
आओ गाएं, आओ गाएं–
प्रगीत हम छेड़े नये

जीवन को साहित्य के रंगों से सजाएं
उदय शंकर नर्तन करेगा–
चमारों का, कहारों का
किसी छोछे से गांव में, पीपल की छांव में
छनन–छन छनके सांस में
अदब की सितार पर गाये
तलत जनता के तराने
और गीता शाम के मुख से जो गूंजे
दुनिया के मज़दूरों की हो वो गाथा।

चोंच में डाली दबाए प्रेम की
संदेश दे जो कांति का
भारत की जन–चेतना को
जनता है मूर्छित लक्ष्मण की तरह
उसे होश में लाने के लिए
उड़ेगी कोयल पिकासो की सजीव

और किमत के तराने
सींखचों से निकलकर
चीन के पीले मैदानों में हुए कुरबान
किसी कवि के जीवन पर अर्पित
रक्त बहाया, दिया बलिदान

थी चौथाई–जगत की आबादी
अफ्यून से बेहोश
बागी माऊ ने भर दी गर्मी,
खून में भर दिया जोश
और कला को जीवन का रूप देकर
ढह रहे जर जर पुराने
खंडहरों की खाक से

भव्य इमारत रंगीन जीवन की
फिर नये सिरे से उठा दी
जिसकी दीवारों पे खुशहाली
ओ अमन के बेल–बूटे
और आंगन में ज़खीरों के
फव्वारे तेज़ अट्टालिका
खुशहाल ज़िंदगी की कला के
हाथों सजा दी
इस तरह लेनिन का जीवन
जो ऐसी भव्य कविता है
जिसे इंसानियत के अदब ने
महफूज रखा है।।

राजनीतिक स्वरों का प्रस्फुटन – दो सैनिक –

''तरुण कवि वेदपाल दीप 1943 ई. में कविताएं लिख रहे थे। उनकी लेखनी वर्ष 1953 ई. तक निरंतर हिन्दी से जुड़ी रही। इस वर्ष उनकी पुस्तिका '' दो सैनिक'' का प्रकाशन हुआ, जिसमें 1947 से 1951 ई. तक रची गई अधिकांश राजनीतिक स्वर की कविताएं संकलित थी। इन दस वर्षों के मध्य उनकी काव्य–प्रतिभा निरंतर विकसित होती गई।

इसी बीच उन्होंने लखनउ जाकर हिन्दी में एम.ए. की परीक्षा उत्तीर्ण की। वेदपाल दीप की आरंभिक रचनात्मकता का एक दशक बेहद महत्वपूर्ण है क्योंकि इस में उन्होंने हिन्दी के माध्यम से काव्याभिव्यक्ति की और अपनी वैचारिक दृष्टि को विकसित किया। इस अवधि की कविता में उनकी कविता क्रमशः जो स्वर गूंजते दिखाई पड़ते हैं उन में प्रमुख हैं–

1. प्रेम निवेदन
2. राष्ट्र प्रेम
3. शहीदों तथा स्वतंत्रता सेनानियों का गुणगान

4. गांधीवादी विचारधारा का समर्थन
5. सांप्रदायिक विचारधारा से असहमति और इससे दूरी
6. साम्यवादी क्रांति का बिगुल।

वैचारिकता के अंतिम पड़ाव पर वे साम्यवाद की ओर आकृष्ट होकर क्रांति का सपना बुनने लगते हैं और साथ ही एकाएक अभिव्यक्ति का माध्यम हिन्दी के बजाय डोगरी कर लेते हैं।

रोम–रोम में बसा हुआ प्रेम–रस–

यह बता पाना कठिन है कि वेदपाल दीप की पहली कविता कौन सी थी। किंतु, यह निश्चित है कि कविता का शौक उन्हें बालपन से ही था। अपनी तुकबंदियों से वे रसोद्रेक करने की क्षमता विकसित करते रहे। 1953 ई. तक उनकी कलम सध चुकी थी। इसका पता हमें उस वर्ष उनके कवि मित्र यश शर्मा के गंभीर सन्निपात ज्वर से ग्रस्त होने की घटना से चलता है। दीप अपने मित्र को देखने उनके घर पंहुचे तो देखा यश जी बेसुध पड़े हुए हैं। सभी कह रहे थे यश का बचना मुश्किल है। उनसे बात तो न हो पाई, किंतु लौटते हुए उन्होंने मित्र यश की गंभीर दशा देखकर एक कविता तत्काल रच कर उनके सिरहाने रख दी। इस कविता की कुछ पंक्तियां यों थी–

"यह समय नहीं है जाने का,
यह समय है तेरे गाने का।
यह रैन गुज़र ही जाएगी,
फिर चमकीला दिन आएगा।
फिर गीत सुनाएगी नदिया,
फिर नाच उठेगी बसुधा।
फिर से तुम जीवन पाओगे,
मृदुहास लिये नव–शिशु का–सा।"

प्रायः देखा गया है कविता को अभिव्यक्ति का माध्यम बनाने वाले युवा–कवि अपने सामाजिक वातावरण, राजनीतिक परिस्थितियों तथा देश–काल वातारण को उद्वेलित करने वाली घटनाओं को अपनी आरंभिक रचनाओं में शब्द दिया करते हैं। देश–प्रेम के साथ–साथ मानव–प्रेम भी उनकी लेखनी को प्रेरित करता है। युवा दीप का कवि मन भी इन्हीं राहों से गुज़रा था। 1953–54 ई. में प्रकाशित उनकी पुस्तिका ''दो सैनिक'' में इस प्रकार के मिश्रित भावों की कविताएं संकलित हैं।

प्रेम की अनंत तृषा :–

''दो सैनिक'' की कविताओं में हमें कवि की वैचारिकता में कुछ–कुछ स्पष्टता आती दिख जाती है। जो शक्तियां भारतीय राष्ट्र की एकता एवं स्थिरता की पक्षधर हैं कवि उन्हें सराहता है। किंतु इस से कुछ वर्ष पूर्व जब कवि मन कलम चलाने से पूर्व ली जाने वाली एहतियात के प्रति जागरूक नहीं था और जब किसी युवति के सौंदर्य की ओर आकर्षित हुआ तो वह अपनी प्रेमानुभूति को प्रस्फुटित होने से रोक न पाया।

इस तीव्र आवेग को ''शल्या'' शीर्षक से शब्दबद्ध किया। शब्दों से भावों का तक्षण कवि की घनीभूत अनुभूति का परिचायक है, जब कि दुनियादारी तथा कविता की मर्यादाओं के प्रति कवि के अनाड़ीपन का प्रतिफलक भी है। अपने इक–तरफा प्रेम की यात्रा की सही नाम कविता में बुनना अनाड़ीपन ही तो था। यदि शल्या के स्थान पर कोई काल्पनिक नाम दे दिया जाता तो मुसीबतों का वह बवंडर न उठता जो इसके प्रकाशित होने पर उठा।

''शल्या'' शीर्षक से लिखित यह प्रेम–निवेदन मित्र – मंडली को सुनाने तक सीमित रहता तो बात वहां तक न पंहुचती जहां बाद में पंहुची और अंततः युवा कवि हृदय के पछतावे का कारण बनी–

''शल्या तुम पाषाण बड़ी हो।

शल्या तुम नादान बड़ी हो।।"

कवि मित्रों के प्रोत्साहन और प्रेरणा स वेदपाल दीप की ''शल्या'' पुस्तिका के रूप में सामने आई। इतना ही नहीं तमाम परिचित लोगों में इसे निशुल्क बांटा गया। दीप के भावुक कवि हृदय में एक तरफा प्रेम की मादकता ठाठें मार रही थी। उसे लगा जैसे उसने इस पुस्तिका के रूप में अपने निश्चल प्रेम निवेदन का प्रेम–शास्त्र रच डाला हो। किंतु जैसे ही नगर में इस कविता की सुगबुगाहट होने लगी, सवालिया नज़रें उठने लगी। प्रश्न पूछे जाने लगे। कवि के उत्साह और पागल जोश पर जैसे ढेरों पाला पड़ गया। जैसे–जैसे चर्चा बढ़ रही थी, वैसे–वैसे परेशानी भी बढ़ती जा रही थी। लड़की के परिजनों ने इसे बदनामी का घिनौना प्रयास माना। बात बढ़ती जा रही थी। परेशानियां भी बढ़ीं। नवोदित प्रेम अपने दुस्साहस पर पछताने लगा।

अब दीप प्रायः अपने मित्रों से कतराने लगा। छिपकर रहने में उसे घबराहट से मुक्ति मिल जाती। किंतु, वह केवल उसके घबराने की बात नहीं थी। उनका समस्त परिवार अचानक उभर कर आई मुसीबत से परेशान था। लड़की के परिजन प्रतिशोध से जल रहे थे। इस तमाम झंझट को याद करके दीप ने बाद में ''कल्चरल नोट्स'' (कश्मीर टाइम्स, इंग्लिश, दिनांक 23 दिसंबर, 1980 ई.) में लिखा–

"Prof. Balraj Madhok, The R.S.S. Chief in this state having very close relations with our family in those days came to our rescue and the dispute was amicably settled."

दीप के चाचा त्रिलोकी नाथ जी राजनीतिक रूप से जागरूक व्यक्ति थे। विभिन्न विचारधाराओं के राजनेताओं से उनका संपर्क था। प्रो. बलराज मधोक की मध्यस्थता से सुलझे इस विवाद ने दीप एवं उनके परिवार को राहत दिला दी।

मात्र 16 वर्ष की आयु में घर बैठे मुसीबत को न्यौता देने वाला दीप इश्क की प्रथम सीढ़ी से ठोकर खाकर भी फिर से उठ खड़ा हुआ। फिसल कर वह संभला जरूर मगर तौबा करने के लिए नहीं, पुनः प्रेम नदी में डुबकी लगाने के लिए। सौंदर्य–स्तुति उसका मानसिक मनोरंजन बन चुका था। उसने एक पंगा और लिया। एक नयी कविता लिखी–''एक लड़की पंडित की'' और आगे चलकर कालेज की सहपाठिन की नाक का लौंग गुम हो जाने पर दीप की कलम से एक नयी रचना बाहर निकली। कैफियत थी–''बदनाम होंगे क्या नाम न होगा ?''

दीप की कच्ची उम्र की इन नादानियों का वर्णन बाद में उनके परम मित्र यश शर्मा ने बंजारा शीर्षक डोगरी कविता में यों किया–

'' छोटी लड़की पंडित की, अमर गीत रचेआ हा।
उसने शल्या गी दिक्खी, प्यार दा नगमा लिखेआ हा।
फ्ही अपनी रचनाएं गी, कालेज आई सनांदा हा।
ओह् क्हानी बी चेतै ऐ, जिसदा लौंग गुआचा हा।
ओह् सब बीते मोसम हे, देश गुलाम खुआंदा हा।''

कवि दीप सरल–सरस हदय के युवा थे। दिल फेंक तबीयत थी। अपनी सादगी के कारण भीतर ही भीतर घुटने के बजाय वे अपनी भावनाओं को कविता के माध्यम से व्यक्त कर दिया करते। यह भी कहा जाता है कि ''शल्या'' से पूर्व उन्होंने ''छोटी लड़की पंडित की'' कविता लिखी थी।

दीप के साथी जानते थे उन पर कविता लिखने की धुन सवार है। इस धुन के कारण बहुत–सी वाह–वाही के साथ–साथ नाराज़गियों की धूल भी उठती है। किंतु, इस फक्कड़–तबीयत के युवक को इसकी परवाह कहां थी। बरसो बाद वर्ष 1996 ई. में गपशप के दौरान हमने प्रश्न पूछा– आपने

सीधे–सीधे यह कविता शल्या को संबोधित करके क्यों लिखी ? उसका काल्पनिक नाम क्यों नहीं रख लिया, आखिर आप कविता लिख रहे थे, प्रेम पत्र नहीं।

दीप साहब ठहरी हुयी आवाज़ में बोले–'' मेरे भाई! नादान उम्र थी। मुझे लगता था कि कवि के लिए आवश्यक है कि उसका रोम–रोम प्रेम से भरा हो। कवि मानव–समाज का विशिष्ट प्राणी है। मैं समझता था कवि को प्रेम का विशेष अधिकार है। मुझे अपने कच्चेपन के कारण लगता था कि प्रेमिकाएं कवियों को प्राकृति की देन हैं। मैं सोचता था– मेरी कविता सुनकर वह दौड़ी चली आएगी। अब सोचता हूं वो मेरे जीवन की बात नहीं थी। वो सब मैंने जैसे सपने में किया और लिखा था। ''दीप साहब मुस्कुरा दिए।

तत्कालिक कविता के पुष्प–गुच्छ रचने का सामर्थ्य–

इस उपशीर्षक के आरंभ में कवि दीप को तत्काल कविता रचने की सामर्थ्य का एक प्रसंग वर्णित है। इस प्रकार की क्षमता का प्रदर्शन उनकी लेखनी यदा–कदा करती रहती थी। 1949 ई. की राखी का दिन था। उनके छोटे भाई ललित का जन्म हुए मात्र 10 दिन हुए थे। यह 17 दिसंबर की बात है। दीप आयु के बीसवें वर्ष में थे। उन दिनों राखी के दिन विशेष चहल–पहल होती थी। शारदा और किरण दोनों बहनें इस बात पर इतरा रहीं थी कि आज वे अपने सबसे छोटे भाई ललित को भी राखी बांधेगी। नवजात ललित घर के आंगन में मां की गोद में खेल रहा था।

राखी के खुशियों भरे दिन पर बहनों को नगद के साथ–साथ उपहार भी देने होंगे। दीप आज के दिन कोई विलक्ष्ण भेंट देना चाहते थे। अतः वह कागज कलम लेकर बैठ गए। और शब्दों की जोड़–तोड़ करने लगे। कुछ ही देर में वो एक फुलस्केप पृष्ठ में अपने भावों को फूलों की तरह सजाकर ले आए। तमाम भाई–बहनें माता के चौगिर्द श्रोता बनकर

बैठ गये । तब उनके सामने खड़े होकर कवि दीप राखी की खुशियों का उपहार बांटने लगे। आठ पदों की इस तत्कालिक कविता के शब्द थे–

राखी

सभी ओर थी चहल–पहल,
कई रंग के कपड़े ओ गहने पहने–
निकल रही थीं घर से बहनें,
हर पल जाएं इधर–उधर–

लेकर उर में प्यार सरल.....
नये वर्ष का, नये हर्ष का,
हृदय में प्रवाहित है उत्साह नवल–
बहन जा रही भाई को मिलने,
उर में निर्मल चाव लिए–

प्रेम का लेकर भाव प्रबल.....
भई–बहन के सुखद मिलन का,
आया है दिन सहज–सरल–
ढोल बज रहे डमडम करते,
और बज रही लम्बी कहल–

चारों ओर है चहल–पहल...
बहन का प्यारा छोटा भ्राता,
गोद में लेकर बैठी माता–
अभिज्ञ क्या किससे है नाता,
स्तनय सुधोपम पीता जाता।

बीच–बीच में रहा मचल.....
वर्ष है आशाओं का आया,

बार–बार वक्ष फूल रहा जो,
क्षीण श्वासों की है माया।

खेल रहा ज्यों बाल चपल....
स्वच्छ थाल में रखी हैं,
बर्फी की सित डलियां–
किरण बहन एक उठा कर,
भर देती भाई के मुख में कलियां–

डर कर नन्हा है जाता दहल....
रेशम के कोमल धागों से
बुनी हुई है राखी सुंदर–
बांध रही उसके मणिबंध पर,
गले लगाकर कहती– मेरे चंदा
स्नेह पड़ा तब उछल–उछल.....

परिवार के तमाम श्रोता अपने कवि भाई के इस काव्यात्मक शब्द–गुच्छ को पाकर मंत्र–विद्ध से उसे देखते रहे। सराहना के लिए शब्द नहीं हैं। शब्दों द्वारा हृदय के भावों की ऐसी प्रस्तुति उन्हें एक चमत्कार ही प्रतीत होती है। यह कविता घर में खुशियां लाने वाला अमूल्य तोहफा था। इसे छोटी बहन ने वर्षों सभंल कर रखा– अपनी अनमोल निजी संपत्ति मानकर।

इस दिन दीप ने इस कविता में एक पद और जोड़ा–

किरण है भोली ओ अनजान,
दीप को कहती कवि महान।
दीप और किरण नहीं भिन्न हैं,
विदूषी दीप की प्यारी बहन है।
जीवन कठिन है नहीं सहल....

कविताओं के प्रति बे–परवाही–

तत्काल कविता गढ़ने वाले इस कवि ने अनेक कविताएं लिखीं, किंतु उनकी संभाल न रखी। कई बार वह कवि गोष्ठी में पढ़ने के लिए फिलबदी (तत्काल) कविता लिखा करते थे। और उसे पढ़कर मुशायरा लूट लेते। अभी वाह–वाही और तालियों की गूंज ठंडी न पड़ी होती कि वह अपनी इस कविता को मंच पर ही टुकड़े–टुकड़े करके फैंक दिया करते। संभवतया उनके हृदय में अभी सांत्वना नहीं थी। वह कविता को ओर आगे ले जाना चाहता था। अहसास था कि अभी वह अमर रचना नहीं रच पाया है जो उसके अंतस् को स्तर के प्रति आश्वस्त कर दे।

उसे तालियों की गड़गड़ाहट से अधिक आत्मिक तुष्टि की तलाश थी। वह अमर और अमिट भावों की तलाश में भटक रहा था। लेखनी सधती जा रही थी, भाव पुख्ता होते जा रहे थे। सांसारिक समझ विकसित हो रही थी। वह पृष्ठों के पृष्ठ लिख और फाड़ रहा था। इन्हीं दिनों उसने मातृ–भाषा डोगरी की ओर रुख कर लिया। यहां भी वह अपनी काव्याभिव्यक्तियों को फाड़ता रहा। तब रामनाथ शास्त्री ने आगे आ कर उसके कागजों को संभाला और डोगरी, में उसकी शाहकार रचना ''अस ते आं बनजारे लोक'' प्रकाश में आई।

दुर्लभ पुस्तिका : दो सैनिक–

सन् 1953 ई. में लखनउ से एम.ए. करके लौटे दीप ने अपनी राजनीतिक भाव–भूमि वाली कविताओं को एकत्रित करके, इन में देश प्रेम की कुछेक कविताएं मिश्रित करके एक छोटा सा कविता संग्रह प्रकाशित करवाया। इसे ''दो सैनिक'' नाम दिया गया। 40 के लगभग पृष्ठों की इस पुस्तिका में 23 हिन्दी की और 2 डोगरी की कविताएं सम्मिलित की गई हैं। इन कविताओं के शीर्षक कविता के विषय में जानकारी देने वाले हैं।–

1. दो मित्र
2. दो मोती
3. दो आंखें
4. दो प्रेमी
5. दो कैदी
6. दो मनुष्य
7. दो सैनिक
8. लक्ष्मी बाई
9. दो रास्ते
10. दो नारियां
11. दो सियासतदान
12. दो झंडे
13. दो देश
14. डुग्गर देश
15. दो भाई
16. दो शेर
17. शेरे–कश्मीर
18. दो रूप
19. दो शब्द
20. दो कौमी तराने
21. दो गीत
22. वीर जवाहर लाल
23. दो शत्रु
24. दो चट्टानें
25 दो कविताएं (डोगरी)

इस पुस्तिका के अंतिम पृष्ठ (Back Title) तथा भीतरी मुख्यपृष्ठ (Inner Back Title) पर कवि दीप के निकटस्थ संबंधियों और मित्रों के संदेश और शुभकामनाएं प्रकाशित की गई हैं। अंतिम पृष्ठ पर दीप जी की माता (शांति देवी), दो मामा (शाम रत्न, देव रत्न) के शुभकामना संदेश थे। इन तीनों से ऊपर किसी चौथे व्यक्ति का संदेश भी था। हानिग्रस्त पुस्तिका हस्तगत होने के कारण इन चारों संदेशों को उद्धृत कर पाना संभव नहीं है, किंतु पुस्तिका की पृष्ठ संख्या 39 पर प्रकाशित तीनों संदेशों की बानगी यों है–

दो आर्शीवाद शीर्षक के अंतर्गत प्रकाशित संदेश यों हैं–

1. **पं. रघुनाथ दास शास्त्री** –''इस कवि के बालमन दुर्लभ लोकोत्तर गुणों को देखकर मैं आशा करता हूं कि भविष्य में यह कवि कुमुद बंधु अपनी कविता कौमुदी से जनता के मन को विशेष आहलादित करेगा।''

2. **प्रोफैसर रामनाथ जी (एम.ए., एम.ओ.एल)** – श्री वेदपाल दीप की कविता में कमनीय ऊषा की सी कांति है। वाणी पर उसका अधिकार और गति बड़ी असाधारण है। मुझे पूर्ण आशा है कि इस नन्हे कवि का भविष्य उज्जवल है। इसी पृष्ठ पर दीप जी के सहपाठी एवं मित्र और यश शर्मा का संदेश यों है–

3. **मित्र की ओर से –** मुझे इस बात का गर्व है कि दीप जैसा कवि मेरा परम मित्र है। कवि होने के नाते से वह मेरे और समीप हैं मुझे उसके साथ कई वार घूमने और मिल–बैठने का मौका मिला। ...और मैं उसे भली प्रकार जान पाया हू इसी परिचय की नींव पर मैं कह सकता हूं कि वह पागल, जिसके हृदय में असीम वेदनाएं करवट लेती रहती हैं और वहीं वेदनांए कारण बन जाती हैं दुनिया के पागलपन का।

4. **कविवर यश–** जब यह पुस्तिका '' दो सैनिक'' प्रकाशित हुई वेदपाल दीप 24 वर्ष के थे। और वे एम.ए. हिन्दी कर चुके थे। किंतु, रघुनाथ शास्त्री इस युवक कवि को ''बाल–कवि'' कहते हैं तो प्रो. रामनाथ शास्त्री ने उन्हें नन्हा कवि कहा है। कारण स्पष्ट है, रघुनाथ दास शास्त्री चूंकि दीप के सगे नाना थे इसलिए वह उन्हें अभी बाल–कवि ही प्रतीत होते थे जबकि प्रो. रामनाथ शास्त्री उसी कालेज में प्राध्यापक थे जिसमें दीप ने बी.ए. पास की थी। उनकी दृष्टि में भी अभी वे प्रौढ़ कवि नहीं थे।

दो सैनिक में संकलित कविताओं में से मात्र चार ऐसी हैं निजके शीर्षक में दो शब्द नहीं लगाया गया। ये कविताएं हैं– लक्ष्मीबाई, डुग्गर देश, शेरे–कश्मीर और वीर जवाहर लाल।

शेष तमाम कविताओं के शीर्षक दो शब्द पूर्व–प्रत्यय की भांति अनिवार्य रूप से प्रयोग में लाया गया है। इसका तात्पर्य यह है कि ऐसी प्रत्येक कविता में दो व्यक्ति अथवा भाव या दो विचार धाराओं को समीप खड़ा किया गया है। कवि की वैचारिकता को स्पष्ट करने के लिए हमें

देखना होगा कि यह दो–दो के जोड़े किस कविता में कौन से भाव, व्यक्ति या चीज को रूपायित करते हैं–

प्रथम कविता ''दो मित्र'' जिसका दूसरा शीर्षक प्रकोष्ठों में ''शेख और ब्राह्मण'' दिया गया है। इस में शेख अब्दुला और पं. जवाहरलाल नेहरू के राष्ट्रहित में किए गए कामों का ब्यौरा मौजूद है। ''शेख और ब्राह्मण'' पद अल्लामा इकबाल से उद्धृत किया गया है।

दो मोती'' शीर्षक में डुग्गर देश के दो सपूतों– राजेंद्र सिंह और धनवंतरी के बलिदान का गुणगान किया गया है। यही दोनों डुग्गर के दो मोती हैं।

''दो आंखें'' शीर्षक कविता में जम्मू और कश्मीर को भारत के शरीर की दो आंखें बतलाया गया है।

''दो प्रेमी'' शीर्षक प्रतीक हैं जम्मू और कश्मीर के लोगों के। जम्मू की भावनाओं को बर्फानी पीर पंचाल व्यक्त करता है जबकि प्रकृति कश्मीर की प्रतीक बताई गयी है। इन दोनों का अटूट रिश्ता बताया गया है।

''दो कैदी'' में मौलाना सय्यद और अफज़ल बेग का वर्णन है जिन्हें आर. सी. काक का मंत्रि मंडल मिटा देना चाहता था।

''दो मनुष्य'' में नेहरू और गांधी के प्रेरक व्यक्तित्वों का गुणानुवाद किया गया है।

''दो सैनिक'' वह कविता है जिस पर पुस्तिका का नाम दिया गया है। कवि संभवतया इस शीर्षक के अंतर्गत जिन दो स्वतंत्रता सेनानियों को सम्मिलित करना चाहते थे वे हैं– नेता जी सुभाषचंद्र तथा लक्ष्मीबाई। किंतु दो सैनिक के अंतर्गत मात्र सुभाष जी का वर्णन है जबकि लक्ष्मीबाई पर इसी के आगे एक लम्बी कविता अलग से है।

''दो रास्ते'' समाजवाद तथा साम्यवाद की विचार–भूमि पर बुनी गयी है। कवि साम्यवाद को जीवन का मधुमास मानते हुए कहते हैं–

''दूसरे मार्ग में छाया हर तरफ मधुमास है,
नौजवानों क्यों खड़े हो रास्तों के मोड़ पर–
बढ़ चलो दिल्ली को सबने लगाई आस है।''

असमंजस के दोराहे पर खड़े युवकों को कवि दिल्ली की ओर बढ़ने की गुहार लगाता है। यह गुहार राजधानी को साम्यवाद के लाल रंग में रंगने की है।

''दो नारियां'' में विजय लक्ष्मी पंडित और सरोजनी नायडू सरीखी प्रेरक महिलाओं का गुणनुवाद उपलब्ध है।

भारत की स्वाधीनता के आंदोलन के उत्कर्ष वाले वर्षों में जिनना और मास्टर तारा सिंह दो मित्र आवाज़ें बनकर उभरे थे। इन दोनों पर आधारित है ''दो सियासतदान'' कविता। इसके आरंभिक बोल हैं–

''एक को उसकी अटलता ने सफलता दान दी।
एक को उसके बदलने ने निराली है शान दी।
एक जीता, जीत उसकी मगर भारी हार थी।
एक हारा, हार उसकी विजय की ललकार थी।''

''दो झंडे'' कविता में नेशनल कांफ्रेस के लाल झंडे तथा भारत संघ के तिरंगे की प्रशंसाएं गाई गयी हैं।

''दो देश'' के अंतर्गत दो उपशीर्षकों के नीचे भारत देश और डुग्गर देश की महिमा गान किया गया है। स्तर और दृष्टि से ये दोनों कविताएं कवि की लेखनी के प्रौढ़ होने की सूचना देती हैं। डुग्गर देश से यह पद देखें–

''जहां मंदिरों के मिनारे नभ से बातें करते हैं।
जहां चीड़ के पेड़ प्रबल झंझा में आहें भरते हैं।
जहां आम, जामुन, अमरूदों की गणना है भारी।

जहां मोतिया, गेंदा चमेली की फूली फुलवारी।
वह है मेरी प्यारी भूमि, मेरा डुग्गर देश।
एक सभ्यता, एक संस्कृति, एक ही भाषा–वेश।''

''दो भाई'' में खान अब्दुल गफार खां तथा डॉ. खान साहब का चरित्र–चित्रण किया गया है। ये दोनों फिरकाप्रस्ती तथा देश–तोड़क विचारधारा के विरुद्ध थे।

''दो शेर'' कविता में शेरे पंजाब लाला लाजपत राय तथा शेरे कश्मीर शेख अब्दुला के आजादी के प्रति योगदान को चित्रित किया गया है।

''दो रूप' शीर्षक कविता में कृषक वर्ग और संभ्रांत वर्ग का तुलनात्मक रूप उपलब्ध होता है। कविता के अंत में प्रकोष्ठों में सूचित किया गया है कि यह अनुवाद है। किंतु, किस भाषा के किस कवि की कविता का अनुवाद है, इसकी सूचना नहीं दी गई है।

''दो शब्द'' में शोषक और शोषित की मानसिकता को लेकर कवि दीप ने अपने विचार व्यक्त किए हैं।

''दो कौमी तराने'' में आजादी की मशाल जलाने वाली बाल–सेना हेतु दो गीत प्रकाशित किए हैं। प्रथम गीत के अंत में एक पंक्ति की यह सूचना दी गई है–

बालकों के लिए यही कविता सरल भाषा में लिखी गई है।

''दो गीत–– कविता के अंतर्गत पं. जवाहर लाल पर दो गीतों की रचना की गई है।

''दो शत्रु'' कविता में कवि दीप ने भारत देश के दो शत्रुओं को चिन्हित किया है। ये हैं सांप्रदायिकता और राजसी वर्ग।

इस पुस्तिका की अंतिम हिन्दी कविता का शीर्षक है ''दो चट्टानें''। जब देश का विभाजन करने की आंधी चल रही थी, तब फिरकापरस्तों से अपनी राह अलग करने वाले दो व्यक्तित्व थे– आज़ाद और आसिफ अली जो दो–कौमी सिद्धांत के खिलाफ चट्टान बनकर खड़े रहे। उनके चरित्र की दृढ़ता को चट्टान कह कर सराहा गया है–

'' जब लीग से जाकर मिले बड़े–बड़े योद्धा बली,
उस बक्त आए काम थे, आजाद व आसफ अली।
यह अटल खड़े हैं आज, देश की विपदा टली,
चट्टान बन के हैं डटे, आज़ाद व आसफ अली।

''दो सैनिक'' पुस्तिका की अधिकांश कविताएं सन् सेतालिस के आस–पास के कुछ वर्षों की परिस्थितियों, घटनाओं, नेताओं एवं मार्ग–दर्शकों पर केंद्रित हैं। कुछेक में कवि साम्यवादी विचारधारा को सामाजिक विषमताओं का निदान बतलाता है। वह सांप्रदायिकता तथा द्विराष्ट्रवादी सिद्धांत का समर्थक नहीं है। सन् 1953 ई. में कवि कश्मीर संभाग से आए नेताओं को रियासत का खेवनहार स्वीकार करता है। शेख अब्दुला का गुणगान वह मात्र इस कारणवश करता है क्योंकि शेख ने जम्मू–कश्मीर का भारत में विलय कबूल किया था। इसी भांति आज़ाद और आसिफ अली भी उसके समक्ष राष्ट्रीय हितों के साधक हैं।

वर्तमान समय में इन कविताओं पर समीक्षा दृष्टि डालने से ये मात्र क्षीण एवं रूद्र इतिवृत्त प्रतीत होती हैं। इनका साहित्यक मूल्यांकन प्रायः टेडी खीर ही है। दो सैनिक में संकलित सुभाष, लक्ष्मीबाई, डुग्गर देश, तिरंगा आदि कविताएं कवि की प्रतिभा के प्रति आश्वस्त तो करती हैं– किंतु, इन चार शीर्षकों पर इस से पहले बेहतर कविताएं लिखी जा चुकी हैं। संभवतया विषय चयन तथा निर्वाह की अपक्वता को लेकर प्रो. रामनाथ शास्त्री ने दीप को ''नन्हा कवि'' कहा होगा। यही नन्हा कवि आगे चलकर डोगरी का दिग्गज कवि कहलाया।

किसी कवि के जीवन में एक दशक की रचनात्मक अवधि अति अल्प मानी जाएगी। किंतु, यह तथ्य है कि इस अल्पावधि की रचना धर्मिता में वेदपाल दीप ने पर्याप्त कविताएं लिखी। किंतु, जीवन में चले आए बिखराव ने उनके कवि – व्यक्तित्व को पूर्णतया झिंझोड़ डाला था। उनकी अधिकांश रचनाएं या तो विनष्ट हो गई या ऐसे परिचितों एवं मित्रों के पास रह गईं जिनसें उनके निकट संबंध थे। कवि दीप के हिन्दी कविता को योगदान को पूर्णरूपेण सामने लाने के लिए उनकी खोई हुई हिन्दी रचनाओं की खोज परमावश्यक है।

ooo

दलित साहित्य की अंतर्वस्तु

- प्रो. राजकुमार

'समकालीन भारतीय दलित महिला लेखन ' ग्रंथ में सम्पादक रजनी तिलक रजनी अनुरागी ने भारत भूमि पर दलित आंदोलन की स्थिति परिस्थिति पर विभिन्न दलित ग़ैर दलित चिंतकों की चिंतना और उनके कार्यरूप का विस्तृत वर्णन विश्लेषण किया है ,इनके इसी ग्रंथ से तथ्य विश्लेषण करते हुए और इन तथ्यों का अपने विषय अनुसार पुन:संयोजन करके प्रस्तुत शोध पत्र 'दलित साहित्य की अन्तर्वस्तु' का आधार बनाया गया है ।दलित जीवन पर वर्तमान चिंतन 19वीं शताब्दी के पांचवे दशक से महात्मा ज्योतिर्बा फूले से आरम्भ होता है।

महात्मा ज्योतिर्बा फूले ने मराठी के शब्द 'दलित' का उपयोग दला हुआ शोषित,दमित के अर्थ में किया। उनका कहना है ' विद्या के अभाव में बुद्धि गई ,बुद्धि के अभाव में नीति गई ,नीति के अभाव में धन गया ,धन के अभाव में सब कुछ चला गया '।

अपने इन विचारों अनुसार विद्या , बुद्धि,नीति,धन के अभाव को दूर करने के लिए उन्होंने शूद्रों , अति शूद्रों का आह्वान किया और अपने इन विचारों को मूर्तरूप देने केलिए उन्होंने 1849ई.में पूना, सतारा, अहमदनगर में शूद्रों, अतिशूद्रों की विद्या का प्रबन्ध किया ,पहले स्वयं अपनी अनपढ़ पत्नी सावित्री बाई फूले को पढ़ाया और फिर उन्हें अपने स्कूलों में शिक्षा देने का दायित्व सौंप दिया । इस तरह उन्होंने शूद्रों , अति शूद्रों को उनके पिछड़ेपन ,दयनीय अवस्था और सर्वनाश से मुक्ति दिलाने की ओर पहला कदम बढ़ाया ।

वे मानते रहे कि शूद्रों ,अतिशूद्रों और स्त्रियों की दयनीय दशा का कारण वर्ण व्यवस्था है और इसमें निहित जाति व्यवस्था है । उन्होंने

ब्रिटिश सरकार को आवेदन किया कि ब्राह्मणवादी ताकतों के प्रभाव को कम करने के लिए नौकरशाही तथा शासकीय पदों को कम किया जाए ,परन्तु ब्रिटिश सरकार ने भारत में चली आ रही जाति व्यवस्था में दखल नहीं दिया।

1852ई. में उन्होंने 'बाल हत्या प्रतिबन्धक गृह ' की और 1864ई में 'अनाथ आश्रम ' की स्थापना की। इस तरह भ्रूण हत्या ,बाल हत्या का विरोध किया और विधवा विवाह पर बल दिया । 23सितंबर1873ई को उन्होंने 'सत्यशोधक समाज 'की स्थापना की,जिसके द्वारा छुआछूत जैसी रूढि का विरोध किया और अछूतों को भी अन्य समुदायों की तरह समान अधिकार देने की पैरवी की और उनके लिए अपने घर का पानी का हौज़ खोल दिया। इस तरह उन्होंने परम्परावादी उच्च वर्ण के लोगों को बदलने के लिए उत्साहित किया ।

महात्मा ज्योतिर्बा फूले ने हिन्दु समाज में अंधविश्वास और पाखण्ड फैला रहे मंदिरों के संचालकों द्वारा दान में प्राप्त धन के दुरुपयोग को रोक कर दलितों गरीबों की दु:खद अवस्था को सुधारने के लिए प्रयोग में लाने की मांग की । उनके 'सत्यशोधक समाज' ने साधारण ढ़ंग से बिना खर्च के अनेक विवाह करवाए।

ज्योतिर्बा के बाद दक्षिण भारत में 1890ई में 'आदि द्रविड़ महाजन सभा मद्रास ' बनी जिसके प्रवक्ता ने पिछड़ों को 'आदि द्रविड़' नाम देने की मांग की और 'हिन्दु सर्विस लीग हैदराबाद' के भाग्यरेडी के नेतृत्व में 'द्रविड़ आंदोलन' चलाया गया ।

इस तरह 19वीं शताब्दी के अंत तक दलित चेतना को कई मुद्दे मिले, और यह चेतना आंदोलन मुखी होने लगी।और दलितों के जीवन से जुड़ी समस्याओं पर चर्चा होने लगी ।

20वीं सदी के आरम्भ में कर्नाटक में दलित वर्गों के लिए मैसूर में 1904- 05 के आसपास 76 विद्यालय आरम्भ हुए परन्तु इन स्कूलों से ब्राह्मण और गैर ब्राह्मण में राजनीतिक विवाद खड़ा हो गया इसी विवाद से 1905 ई के बाद मैसूर में दलित चेतना का उभार आया ।

महाराष्ट्र में 1907ई में फागू जी बसोड़ ने नागपुर में दलितों में चेतना की जागृति के लिए अनेक संस्थान खोले। इन संस्थानों में लड़कियों के लिए भी एक स्कूल था।

लगभग इन्हीं वर्षों में बंगाल में श्री हरिचंद ठाकुर के पुत्र गुरु चन्द ठाकुर ने 'नाम शूद्र वैल्फेयर एसोसिएशन ' बनाई और दलितों के लिए स्कूल खोले और चाण्डाल शब्द के उपयोग पर प्रतिबन्ध लगाने की मांग की जो स्वीकार हो जाने पर चण्डाल नाम को 1911 की जनगणना रिपोर्ट में से हटा दिया गया।

इस आधार पर बंगाल की 'नाम शूद्र एसोसिएशन 'ने 1912 मेंे श्री मुकुन्द विहारी मलिक ने विधायिका में दलितों के लिए 17% आरक्षण की मांग की ।

पंजाब में श्री मंगू राम के नेतृत्व में 'आदि धर्म आंदोलन ' चला,इस आंदोलन के नेता का कहना था कि भील,सांसी,चूहड़ा ,चमार

,भंगी इस देश के मूल निवासी हैं ,जिनकी अपनी वैभवशाली संस्कृति थी किन्तु हिन्दू आक्रमणकारियों ने इन मूल निवासियों को हटा कर उनको दास बना लिया ,इनके इतिहास और संस्कृति को तहस नहस कर दिया और इनके आदि धर्म पर अपने धर्म को थोप दिया , इसलिए मूल निवासियों को अपनी मूलता की गौरवशाली स्थिति को दुबारा हासिल करने के लिए एकजुट होकर संघर्ष करना चाहिए ।

पंजाब में स्वामी दयानंद सरस्वती ने आर्य समाज की स्थापना की तो ग्राहम ने कहा है कि आर्य समाज निम्न जातियों से सिक्ख,मुस्लिम, ईसाई धर्म में पलायन रोकने का प्रयास कर रहे थे।

वैसे सिद्धांतत:आर्यसमाज ने अपने धार्मिक आंदोलन ने दलित जातियों को भी शामिल कर लिया और उन्हें धार्मिक संस्कारों (यज्य आदि) में धर्म सम्बन्धी जिम्मेदारियां उठाने के लिए प्रोत्साहित किया; जो हिन्दू धर्म में नहीं था।

स्वामी दयानंद सरस्वती ने छुआ छूत को प्राचीन काल से न मान करआधुनिक ब्राह्मण वादी हिन्दु वाद की उपज़ कहा परन्तु यह नहीं कहा कि यह छुआछूत कब से आई ।

उन्होंने अन्तर्जातीय विवाहों के प्रोत्साहन के सम्बन्ध में कोई प्रयास नहीं किया। जबकि यह सर्व प्रचलित धारणा है कि भारतीय इतिहास के स्वर्ण युग में अछूतों की परछाई तक से परहजे किया जाता था।

मोतीलाल नेहरु कमेटी ने 1916ई की अपनी रिपोर्ट में दलितों की छुआछूत की समस्या को सामाजिक माना और कहा कि इसे शिक्षा से सुलझा लिया जाएगा–

'Untouchable donot need or want any political facility as such the the problem of untouchablity is a social one that will be solved through education '

परन्तु इस कारण 1916पैक्ट में दलितों को हिन्दू ही माना गया और हिन्दुओं की तरह ही निर्वाचन में कोई अलग प्रतिनिधित्व न मिला जबकि नेहरु कमेटी ने 'मुस्लिम लीग' के नेतृत्व में मिले मुस्लिमों के लिए अलग निर्वाचन के अधिकार की मांग को स्वीकार लिया था। डॉ अम्बेडकर ने दलितों को अलग निर्वाचन का अधिकार न मिलने पर अपने पत्र 'बहिष्कृत भारत' में मोतीलाल नेहरु समिति की रिपोर्ट से अपनी असहमति प्रकट कर दी और देश में व्याप्त सामाजिक अन्याय का गूढ़ विश्लेषण कर समझ लिया कि दलित तो जीवन निर्वाह की मूलभूत सुविधाओं से भी वंचित है ,उसे तो नल कूपों कुओं,तालाबों तक से पानी लेने का अधिकार नहीं और यह भी समझ लिया कि हिन्दू दलितों को अलग अस्मिता के रूप में स्वीकार नहीं करेंगे।इस तरह दलितों का आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक शोषण जस का तस होता रहेगा , उन्हें अस्पृश्यता यानी छुआछूत का शिकार होना पड़ेगा।और हिन्दुओं से अलग कोई अधिकार न मिलेगा

डॉ अम्बेडकर से पहले के नेता बी. आर.शिंदे व चन्द्रावराक दलित समुदाय को कांग्रेस से जोड़ना चाहते थे और कहते थे कि पिछड़ों को

अन्य लोगों की भांति चुनाव प्रक्रिया में भाग लेना चाहिए और चुनाव में जो भी चुना जाएगा वह पिछड़ों तथा अछूतों के हितों का ख्याल रखेगा ।

डॉ अम्बेडकर इस विचार से कतई सहमत न था ,अत: उसने 1917ई में जब संवैधानिक परिवर्तन के लिए ,Indian Franchise Commission (South borough committee)

भारत यात्रा पर मुम्बई आया तो गनई और डॉ अम्बेडकर ने पर्याप्त सुबूत प्रस्तुत करके अछूतों के लिए अलग से निर्वाचन क्षेत्र का अधिकार दिए जाने की मांग की। परन्तु उन दोनों की यह मांग अनसुनी रह गई।

इस समय भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस तथा ब्रिटिशराज में राजनीतिक प्रतिस्पर्धा चल रही थी और भारत के सभी अल्पमत समाज हिन्दू समाज की बहुमतता में अपने लिए सुरक्षित स्थिति चाहता था ,इसी लिए हिन्दू समुदायों के उच्चवर्ग द्वारा सताया हुआ दलित समाज अपने लिए संविधान में स्थान सुरक्षित करने की तलाश में था ,इसी कारण 1917 से ही गनई और डॉ अम्बेडकर 1917 अछूतों के लिए अलग निर्वाचन क्षेत्र का अधिकार मांग रहे थे और मोती लाल नेहरु समिति के विरुद्ध असहमति दे चुके थे और दलित समुदाय को कांग्रेस से अलग रखना चाहते थे ।

1919 ई में मैसूर प्रशासन को 'कुरबा एसोसिएशन' और 'मुस्लिम एसोसिएशन' ने एक ग्यापन देकर यह शिकायत की कि पिछड़े वर्ग को तो प्रतिनिधित्व दे दिया किन्तु दलित वर्ग को अनदेखा कर दिया।

इसी अनदेखी से सी .आर.रेड्डी और मुरुगेश पिल्ले ने दलितों को संगठित करने में रूचि दिखाई और मुरुगेश पिल्ले के नेतृत्व में 'आदि द्रविड़ अभिवृद्धि संघम ' ने और 'जम्बा संघ' ने आदि द्रविड़ के अधिकारों के लिए संघर्ष किया ।

1919ई में राष्ट्रीय स्वतंत्रता संग्राम में भाग लेते हुए ई.वी.रामा स्वामी नायकर पेरियार कांग्रेस में गए , वह वर्ण व्यवस्था से शूद्रों को मुक्ति दिलाने के लिए चाहते रहे कि गैर ब्राह्नण जातियों के आरक्षिण के लिए प्रस्ताव लाया जाए परन्तु जल्दी ही कांग्रेस से उसका मोहभंग हो गया क्योंकि कांग्रेस ने गैर ब्राह्मण जातियों के आरक्षण के उनके प्रस्ताव को अमान्य घोषित कर दिया।तब उन्होंने दक्षिण भारत में ब्राह्मणवाद विरोधी 'पेरियार आंदोलन' चलाया ।

1921ई में 'आदि कर्नाटक संघ' के ए.के.एस ने गोपालस्वामी की अध्यक्षता में एक कार्यक्रम के द्वारा दलित छात्रों को शिक्षा संस्थानों में प्रवेश देने ,पानी के टैंक खोलने तथा मंदिर में प्रवेश की मांग को उठाया ।

1923ई.में 'पंचम' की राजनीतिक कांफ्रेंस आयोजित की गई जिसमें तमिल समाज सुधारक ब्राह्मण गोपाल स्वामी अय्यर द्वारा आदि द्रविड़ और आदि कर्नाटक द्वारा दी गई (टर्मिनोलोजी) यानी नाम शब्दावली को अपना लिया गया।

जबकि दक्षिण भारत में आदि द्रविड़ और आदि आंध्र आंदोलन में दलितों ने सवर्ण हिन्दुओं द्वारा दिए नाम 'पंचम' से अपनी पहचान को अलग करते हुए स्वयं के लिए 'आदि द्रविड़ ', 'आदि आन्ध्र', 'आदि कर्नाटक' शब्द का प्रयोग किया ।

'आदि द्रविड़' 'आदि आन्ध्र' आंदोलन (1920-31)ने दलित वर्ग को यहां के मूलनिवासी और यहां केअसली शासक कहा , पंजाब में मूलनिवासी आंदोलन चल ही रहा था ।मूलनिवासी की विचार धारा के ले कर 'आदि आन्ध्र महाजन सभा' व 'आदि द्रविड़ महाजन सभा ' का निर्माण कर लिया गया ।

हैदराबाद राज्य में माला और मातंग दलित जातियों ने हिन्दू और मुस्लिम दोनों समाजों के अत्याचार को सहा ,मुस्लिम उनसे भरपूर शारीरिक श्रम लेते और शारीरिक शेषण भी करते ,सवर्ण हिन्दू उन्हें अस्पृश्य कह कर उनसे छुआछूत पूर्ण व्यवहार करते परन्तु पर्दे में उनका शारीरिक शोषण करने से परहेज न करते साथ ही उन्हें मूल भूत अन्य अधिकारों से वंचित रखते ।

वहां प्रचलित देवदासी जैसी प्रथा के तहत इन दलित जातियों की नाबालिग कन्या की विट्ठल्ल से शादी करके कन्या को विट्ठल की दासी बना कर शासकों और धर्माधिकारियों की वासना की शिकार बनने के लिए विवश कर देते। दलितों की माला और मातंग जातियों पर हो रहे ऐसे अत्याचार के विरुद्ध हैदराबाद में 'ब्रह्म सभा ' के सदस्य और 'मान्य संगम 'के संस्थापक भाग्यरेड्डी वर्मा ने मध्यम वर्गीय दलित चेतना को हवा दी ।

इन्हीं भाग्यरेड्डी के समय दक्षिण भारत के तमिलनाडु में पेरियार 20वीं शताब्दी के तीसरे दशक में वर्ण व्यवस्था से शूद्र की मुक्ति कराना चाह रहे थे।

उन्होंने 1919ई में कांग्रेस छोड़ कर ब्राह्मणवाद विरोधी महत्वपूर्ण 'पेरियार आंदोलन' चलाया।

इस समय मैसूर में दलित आंदोलन के नेता राजनीतिक,सामाजिक मुद्दों की अपेक्षा आर्थिक मुद्दों जैसे कि भूमि ,शिक्षा तथा परम्परागत पेशे आदि पर अधिक मुखर रहे।

मैसूर के' आदि कर्नाटक संघ' के नेता गोपालस्वामी ने गांधी जी की रामराज की अवधारणा से सहमति नहीं जताई,वह कह रहे थे किजिस रामराज में वेद पढ़ने के कारण शूद्र ऋषि शम्बूक की राम द्वारा हत्या कर दी गई उस राम राज में दलितों को कुछ नहीं मिलने वाला । आलोचना की और कहा कि रामराज्य की स्थापना में दलितों की स्थिति सुधरने की अपेक्षा और बदतर हो जाएगी।

पेरियार ने 1926ई में 'आत्म सम्मान लीग ' की स्थापना की। इसकी पहली कांग्रेस 1929ई में हुई। पेरियार की बुद्धिवाद और इतिहास में गहरी आस्था थी ,उन्हों ने उन सभी परंपराओं को नष्ट करने पर बल दिया जो वर्ण व्यवस्था पर आधारित थीं। उन्होंने घोषणा की- 'ईश्वर नहीं,धर्म नहीं,ब्राह्मण नहीं' ।

इस नारे को राजनीतिक एजेण्डा बनाते हुए इसे धर्म शास्त्र के तर्क की कसौटी पर कस कर पेरियार ने दलित आंदोलन को पूरे प्रदेश (मैसूर) में जन आंदोलन में बदल दिया।

पेरियार की 'आत्म सम्मान लीग ' की स्थापना के बाद डॉ अम्बेडकर ने 1927ई.में महाड़ (महाराष्ट्र)में पानी के लिए महाड़ आंदोलन आरम्भ किया और 50000 दलित इस आंदोलन में शामिल हुए । डॉ अम्बेडकर का यह आंदोलन अछूतों को देश के राजनीतिक परिदृश्य में उतारने का
प्रयास था,अब तक अछूतों को अनदेखा किया गया था।डॉ साहिब ने स्वदेश लौटते ही देश में व्याप्त

सामाजिक अन्याय की गूढ़ता को समझा कि दलित जीवन निर्वाह के लिए आवश्यक मूलभूत सुविधाओं से भी वंचित हैं । उन्हें तो नल , कुओं, तालाबों से पानी लेने तक का अधिकार नहीं है। अछूतों की ऐसी स्थिति से आहत कानून की सर्वोच्च डिग्री धारक डॉ साहिब ने 'महाड़ आंदोलन' आरम्भ कर दिया और दलितों में राजनीतिक चेतना को जागृत कर दिया।और दलित समुदाय को कांग्रेस से अलग रखने के विचार से डॉ अम्बेडकर और उसके साथियों ने 1927ई में साईमन कमीशन को 'बहिष्कृत हितकारिणी सभा 'की ओर से Self government के लिए एक ग्यापन दिया' Safe guard s for the protection of the interests of the deprssedclasses as a minority in the Bombay Presidency'

इस ग्यापन का तर्क यह था कि स्वशासन के अन्तर्गत होने वाले चुनाव में सभी सीटें हिन्दुओं द्वारा कब्जा ली जाएंगी और अल्पमत समुदाय विशेषतया दलितों को उनसे कुछ नहीं मिलेगा । दलितों का विकास तभी होगा जब दसितों द्वारा दलितों का प्रतिनिधि चुना जाएगा अन्य हिन्दू व्यक्ति इनके हितों को पूरा करने में अक्षम सिद्ध होंगे।'इस ग्यापन से कांग्रेसबौखला गई और उसने डॉ अम्बेडकर को अँग्रेजों का पिट्ठु तक कह दिया।

डॉ साहिब के महाड़ आंदोलन 1927ईऔर साईमन कमीशन को 1927ई के दो वर्ष बाद 1929ई में पेरियार की 'आत्म सम्मान लीग ' की पहली कांग्रेस 1929ई में हुई। जिससे 'पेरियार आंदोलन' 'जन आंदोलन' में बदल गया।

'पेरियार आंदोलन 'के आधार भूत सिद्धांत थे -

1. ब्राह्मण पुरोहिती का विरोध ।
2. जातिगत व्यवस्था का विरोध।
3. सभी धर्मों की आलोचना।
4. स्त्री पुरुषों की समानता ।
5. नास्तिकता ।

पेरियार का मानना था कि हिन्दू धर्म शारीरिक श्रम को असम्मान की दृष्टि से देखता है । यानी मुख , बाजू,आदि आदि क्रम से शारीरिक अंगों द्वारा किए गए श्रम में हेयता का स्तरीकरण करता है।

पेरियार का भी ज्योतिर्बा फूले की तरह दलितों के उत्थान के बारे मत था कि शोषित वर्गों को स्वयं अपनी लड़ाई लड़नी होगी । उन्होंने वर्ण

वादी व्यवस्था का विरोध किया। उन्होंने स्त्रियों की परम्परागत छवि को कड़ी चुनौती दी । उन्होंने दलितों के बीच विवाह,बाल विवाह के अंत,विधवा विवाह के पुन:प्रचलन,निरक्षरता निवारण , शिक्षा के प्रचार प्रसार पर बल दिया तथा हीनभाव से पूरी तरह विमुक्ति का आह्वान किया । पेरियार लोगों के जीवन और व्यवहार में परिवर्तन कर उनमें समग्र चेतना लाना चाहते थे।

इस बीच 'डॉ अम्बेडकर अनेक असहमतियों के बावजूद संयुक्त निर्वाचन को मानने को तैयार थे किन्तु जब उन्हें सत्ता में दलितों के लिए कई विशेष स्थान मिलता न दिखा तो डॉ अम्बेडकर नेस्वयं दलितों के प्रतिनिधि के रूप में 1930 में हुई प्रथम गोलमेज़ कांफ्रेंस भाग लिया। परन्तु1931 में हुई दूसरी गोलमेज़ कांफ्रेंस में दलितों के प्रतिनिधि डॉ अम्बेडकर गाधी जी के बीच विवाद खड़ा हो गया ,गांधी जी ने डॉ अम्बेडकर को दलितों का प्रतिनिधि मानने से इन्कार कर दिया और स्वयं दावा किया वह स्वयं दलित वर्गों के प्रतिनिधि हैं ,डॉ अम्बेडकर दलितों के प्रतिनिधि नहीं हैं । गांधी जी ने कहा 'While the Congress will always accept any solution that will be acceptable to the Hindus the Mohammdans and the Sikhs Congress will be no party to special reservation or special electorates for any Other minorities '

इस तरह गांधी जी ने मुस्लिमों , सिक्खों के अलावा अन्य किसी को अल्पमत मानने से सीधे सीधे flately refused मना कर दिया। इससे राजनीतिक परिदृश्य पर गांधी जी से डॉ अम्बेडकर के बीच का वैचारिक मतभेद सबके सामने स्पष्ट हो गया और ब्रिटिश सरकार इस मतभेद को दूर न कर पाई ।

अब डॉ अम्बेडकर ने राजनैतिक अधिकारों को संवैधानिक रूप प्रदान करने के लिए राजनैतिक संगठन 'इंडिपैन्डेंट लेबर पार्टी ' का गठन किया और 1931में चुनाव लड़ा और 19 में से17 सीटों पर विजय प्राप्त कर ली। यह पार्टी जाति की अपेक्षा मज़दूरों और किसानों के लिए मेहनत करने के विचार से बनाई गई थी परन्तु जब जाति के सवाल पर भारतीय कम्युनिस्टों और समाजवदियों ने डॉ अम्बेडकर के विचार को अनदेखा कर दिया तो डॉ अम्बेडकर का कम्युनिस्टों आदि पर से विश्वास उठ गया ।

डॉ अम्बेडकर न केवल ब्राह्मणवाद बल्कि पूंजीवाद को भी टक्कर दे रहे थे । वहअपने विचार की अनदेखी पर जान गए कि जाति व्यवस्था इतनी जटिल है कि इस व्यवस्था में आसानी से दलितों को अधिकार प्राप्त नहीं होंगे । इस जाति व्यवस्थागत अवरोध को समझ कर वह वर्ग पर आधारित इंडिपैंडेट लेबर पार्टी को ऑल इण्डिया पार्टी बनाने में सफल न हो सके और उन्हें अनुभव हुआ कि दलित व गरीब सवर्णों की एकता स्थापित होने में अभी और अधिक लम्बे समय की जरूरत है।

17 अगस्त1932 को ब्रिटिश सरकार ने दलित जातियों के बारे कुछ कहते हुए साम्प्रदायिक निर्णय लिया तो गांधी जी ने इस निर्णय के विरुद्ध 20 सितम्बर 1932 को यरवदा जेल में आमरण अन्नछन्न प्रारम्भ कर दिया तब गांधी जी के प्राणों की रक्षा के लिए डॉ अम्बेडकर ने साम्प्रदायिक निर्णय में गांधी जी के संतोष अनुसार संशोधन कर देने की सहमति दे दी। इस तरह गांधी जी की सहमति से पूना समझौता 1932 केअंतर्गत अस्पृश्यों को कुछ मौलिक राजनैतिक अधिकार

दिलवाने में डॉ अम्बेडकर सफल हुए और पूना सनझौता 1932 को लागू कर सरकार ने 'भारत सरकार अधिनियम '1934 में समाविष्ट कर लिया। डॉ अम्बेडकर से पहले से चले आ दलित आंदोलन के पुरोधा महाराष्ट्र के नागपुर के फागू जी बसोड़ ने दलितों में चेतना जागृत करने और उन्हें शिक्षित करने के लिए अनेक स्कूल खोले ..

जिनमें 1907ई में उन द्वारा लड़कियों का स्कूल भी है ,उन्होंने 1909ई में 'निरक्षर हिन्दू नागरिक' और 1913ई में विठल्ल विध्वंसक , मजूर पत्रिका ,और महार आदि अनेक समाचार पत्र निकाले। 1931ई में संत चौखा मेल के जीवन पर आधारित नाटक 'चौखा मेला' लिखा । फागू जी बसोड़ के साथ साथ विठोवा राव जी ,मून पण्डित ने महारों के आंतरिक सामाजिक सुधार के कार्य किये।गनेजी अक्का जी गवई ने एक महार लायब्रेरी की स्थापना की तथा महार सुधारक मंडल की स्थापना की ,इनके इलावा ज्याबाई चौधरी ने भी दलितों की शिक्षा के लिए कार्य किये। फागू जी बसोड़ के बाद भी ये लोग कार्य करते रहे।

1933ई में एच.जी.रंगा ने 'हरिजन नीतिकुडु' उपन्यास लिखा । इसमें एक पात्र ऐसा हरिजन किसान नेता था जिसने दलितों पर होने वाली हिंसा के खिलाफ कार्य किया ,उसी ने वेश्या वृति को रोकने के लिए एक विधवा से शादी की, स्कूलों की स्थापना की और संघर्ष के बाद मंदिर में प्रवेश किया।इस उपन्यास में तत्कालीन समय में चल रहे दलित आंदोलन की तस्वीर देखने को मिल जाती है।

इस विवरण से स्पष्ट हो रहा है कि समूचे देश में विशेषकर पूर्व दक्षिण भारत मेंअछूत और दलित आदि जातियों में सामाजिक राजनीतिक

जागृति के लिए खोले गए उपर्युक्त स्कूलों, पत्रिकाओं,लाइब्रेरियों और उनके जीवन को दर्शाने वाले साहित्य का पठन पाठन दलित आंदोलन को जीवन और गति देने लगा था ।

1940ई में मुस्लिम लीग ने पाकिस्तान की मांग कर दी थी परन्तु कांग्रेस द्वारा अपनाई जा रही नीति से डॉ अम्बेडकर का कांग्रेस से विश्वास उठ गया था और वह इसी चिन्ता मे थे कि आजाद भारत में दलितों की स्थिति क्या होगी क्योंकि यह समय ऐसा था कि हरेक सम्प्रदाय अपने हितों के समर्थन में कांग्रेस पर राजनीतिक दबाव बना रहा था । दलितों को राजनीतिक हित की सुरक्षा के लिए डॉ अम्बेडकर 1942 में 'शैड्यूल्ड कॉस्ट फैडरेशन' बनाया और ऑल इण्डिया शैड्यूल्ड कॉस्ट फैडरेशन के माध्यम से दलितो के पक्ष में माहौल तैयार करने का प्रयास किया और इस फैडरेशन के बैनर तले दलितों के अधिकारों के लिए काम करते हुए चुनाव भी लड़ा।

24 अगस्त1946 में जब भारत की अंतरिम सरकार के मंत्री मण्डल में दलितों के विशेष हितों की रक्षा के लिए डॉ अम्बेडकर को शामिल किया गया।

संविधान में डॉ अम्बेडकर ने दलितों का आरक्षण (अनुच्छेद 5-16), छूआछूत का पूर्णतया निषेध (अनुच्छेद 17)देने के साथ साथ आम नागरिकों को मौलिक अधिकारों में स्वतंत्रता(अनुच्छेद 19)और समानता (अनुच्छेद 14- 18) और राज्य के नीति निदेशक सिद्धांतों की स्थापना आदि से आम आदमी को लोकतंत्र के तहत अनूठी भेंट दी।

'आदि कर्नाटक संघ ' के नेता गोपालस्वामी की गांधी जी के रामराज की अवधारणा से सहमत नही थे और कह रहे थे कि जिस रामराज में वेद पढ़ने के कारण शूद्र ऋषि शम्बूक की हत्या कर दी गई;उस रामराज में दलितों को कुछ नहीं मिलने वाला।'

डॉ अम्बेडकर का भी यही विचार था और उन्होंने कहा कि: भारतीय इतिहास में शक्ति का स्रोत धर्म है ,इसलिए सामाजिक परिवर्तन अति आवश्यक है ,उन्हों ने कहा कि स्वतंत्रता का समानता के बिना बहुसंख्यकों द्वारा अल्प संख्यक पर प्रभुत्व होगा ,स्वतंत्रता से हमें राजनैतिक समानता मिलेगी परन्तु सामाजिक आर्थिक जीवन में असमानता रहेगी क्योंकि भारतीय समाज में समानता का अभाव है ।

अत: हमे इस विषमता का शीघ्रता से अंत करना चाहिए अन्यथा विषमता से बुरी तरह से पीड़ित लोग इस संविधान के महत्व को मिट्टी मे मिला देंगे।अपने इन्हीं विचारों के कारण उन्होंने सभी भारतीयों से अपील की कि वे सामाजिक तथा मनोवैग्यानिक अर्थ में राष्ट्र बनें और जातियों का निषेध करें ;जिनके कारण हम अवनति की स्थिति में न गिरें। उन्होंने आर्थिक को ही एकमात्र शक्ति नहीं माना और सामाजिक परिवर्तन को अतिआवश्यक माना।

उन्होंने तेज़ी से औद्योगीकरण के लिए राज्य समाजवाद और राज्य उद्योग के रूप में कृषि के साथ सामूहिक खेती पर ज़ोर दिया ,इसी सामूहिक खेती में उन्हें छ : करोड़ भूमि के मज़दूर अछूतों की मुक्ति दिख रही थी । उन्होंने लोकतंत्र के प्रति कहा कि स्वतंत्रता ,समानता तथा

भ्रातृत्व भाव के आधार पर अधिष्ठित सामाजिक जीवन ही लोकतंत्र कहलाता है ।

स्वतंत्रता के बाद भी जब दलितों की मौलिक स्थिति में कोई विशेष बदलाव नहीं आया और उन्होंने देखा कि देश के गरीबों ,मज़दूरों, किसानों,महिलाओं की हालत बहुत ख़राब है तो उन्होंने विचार किया कि केवल कॉस्ट माडल से कुछ नहीं होने वाला तो उन्होंने कॉस्ट और क्लास दोनों माडलों का समन्वय करके एक नई राजनैतिक पार्टी (भारतीय रिपब्लिकन पार्टी) की स्थापना करने का विचार किया जिसमें समानता ,बंधुत्व और स्वतंत्रता के मूल्यों को बुलन्द करने की संकल्पना की गई।

इससे उन्होंने ऐसी विचारधारा की कल्पना की जो वर्ग संघर्ष के आदर्श के साथ साथ व्यक्ति को सम्मान व प्रतिष्ठा भी दे। परन्तु इस 'रिपब्लिकन पार्टी ऑफ इण्डिया' का गठन अक्तूबर 1957 में उनके देहांत के बाद ही हुआ।

डॉ अम्बेडकर की विचारधारा के अनुरूप स्थापित की गई 'रिपब्लिकन पार्टी ऑफ इण्डिया ' ने आरम्भ में भूमिहीनों ,गरीबों, दलितों को भूमि दिलाने के लिए तथा आरक्षण लागू किए जाने और दलितों और गरीबों की आर्थिक स्थिति में सुधार लाने के लिए , महिलाओं की स्थिति में सुधार , बदलाव लाने के लिए संघर्ष किया तथा कांग्रेस की दलित और गरीब विरोधी नीतियों के विरुद्ध संघर्ष किया किन्तु शीघ्र ही दलित,जाति और वर्ग की समानता के सपने से शुरु हुई पार्टी राष्ट्रीय

पार्टियों के हस्ताक्षेप और गुटबाज़ी के कारण अनेक बार टूट फूट कर बिखरती गई।

1958 में डॉअम्बेकर वाली पार्टी के 'संयुक्त महाराष्ट् समिति' से रिश्तों को लेकर विवाद शुरु हो गया कि समिति पर कम्युनिस्टों का प्रभुत्व है;इस प्रभुत्व के विरुद्ध बी.सी. कांबले और दादा साहब रूपवते पार्टी छोड़ कर चले गए। 1960 में महाराष्ट्र राज्य के उदय के साथ यशवंत राव चव्हाण ने पार्टी के नेताओं को फुसला कर कांग्रेस से गठजोड़ के लिए मना लिए इसके अतिरिक्त उन्होंने कई टाइप छोड़ो ना अक्षर छोड़ो ना महत्वपूर्ण दलित नेताओं को सीधे सीधे कांग्रेस में शामिल करने की नीति अपना ली।इस कारण 1962 के चुनाव में पार्टी को केवल 3 सीटें मिलीं उनमें से भी एक ग़ैर आरक्षित थी।

1964 में पार्टी के नेता दादा साहेब गायकवाड़ ने महाराष्ट में भूमिहीनों को दिलाने के लिए संघर्ष छेड़ा।1967 में आ.डी.भंडारे कांग्रेस में चले गए पीछे पीछे रूपवते और कांबले ने भी कांग्रेस की सदस्यता ग्रहण कर ली । 1971में पार्टी में मुख्यरूप से दो धड़े उभरे ,दूसरा धड़ा राजा भाऊ खोब्रागड़े के साथ में था फिर गवई गुट से शांताबाई का गुट अलग हो गया ।

यहीं से महाराष्ट् में दलित पैंथर आंदोलन तेज़ी से उभरा और साहित्य में ब्राह्मणवाद विरुद्ध दलित संघर्ष का जुझारू लेखन आरम्भ हुआ।

इस दलित साहित्य में महात्मा ज्योतिर्बा फूले से डॉ अम्बेडकर तक दलित जीवन में देखी गई , अनुभव की गई समस्याओं का स्थिति चित्रण हुआ ।दलित आंदोलन से जुड़ा 1933 तक के साहित्स का उल्लेख मात्र किया जा चुका ,दलित साहित्यकारों की अपेक्षा अनेक सह अनुभूतिप्रवण प्रेमचंद,निराला,नागार्जुन आदि कई साहित्यकारों ने साहित्य रचा है परन्तु दलित पैंथरों ने तब तक विकसित की जा चुकी दलितों की संघर्ष चेतना को अपनी बहुमुखी प्रतिभा से भाव अनुभूति को उसकी मौलिकता के निकटतम रूप में प्रस्तुत करने का दावा किया ,इस साहित्य की अंतर्वस्तु दलित जीवन की चिंता करते रहे चिंतकों की चिंतना है जो उपर्युक्त पंक्तियों में अभिव्यक्त करने का सारस्वत पर्यास किया है ।इस साहित्य का मूल्यपरक विश्लेषण करने की चेष्टा फिर कभी करूंगा ।

ooo

कश्मीरी काव्य में आध्यात्मिक विचारधारा

–बाल कृष्ण 'संन्यासी'

चारों वेदों के संग्रह को श्रुति कहा जाता है। वेदों के दो रूप हैं– एक मंत्र और दूसरा ब्रह्म ज्ञान। उपनिषद् ब्रह्म ज्ञान और दार्शनिक उपदेशों की उपलब्धियों से भरपूर ग्रन्थ हैं। वेद और उपनिषद् वास्तव में ऋषियों और मुनियों की वह रहस्यमय वाणी है जो ब्रह्मांड के रहस्यात्मक तत्वों तथा आत्मा और परमात्मा के परस्पर संबंधों का बोध कराती है। पुराण, रामायण तथा महाभारत जैसे धर्म ग्रन्थ स्मृति के नाम से जाने जाते हैं। इन्हीं धर्मग्रन्थों के आधार पर हिन्दू समाज का गठन हुआ है। इस प्रकार यह कहना उचित होगा कि हिन्दू धर्म, जो संसार के प्राचीनतम धर्म ग्रंथों में से एक है, की नींव वेदों, पुराणों तथा रामायण और महाभारत जैसे धर्म ग्रन्थों पर आश्रित है

अतः यह बात स्पष्ट है कि श्रुति और स्मृति दोनों ही ऋषियों की देन हैं जो अध्यात्मवाद के आभूषणों से सुशोभित होकर नव–नवेली दुल्हन की तरह हर समय पाठकों को अपनी ओर आकर्षित करती है। ऋषियों और मुनियों के साधारण जीवन तथा आहार, शुद्ध आचार–विचार तथा उनके कठिन तप के फलस्वरूप उनसे आध्यात्मिक वाणी फूट पड़ी जो कई हजार वर्षों से चली आ रही है। मानस–जिज्ञासा और आधुनिक युग की मानसिक पीड़ा का समाधान करने में अग्रसर होकर मार्ग–दर्शन करती रही है। ऋषित्व ऋषियों और मुनियों की उस साधारण जीवन–पद्धति का नाम है जिसमें वह सांसारिक बंधनों से मुक्त होकर शुद्ध आचार–विचार तथा अपनी कठिन साधना से उन सूक्ष्म तत्वों का अन्वेषण करते थे जिनके

परिणाम स्वरूप ईश्वर ज्ञान तथ आत्मा और परमात्मा के विलय की भावना उजागर होती थी।

संक्षेप में यह कहना उचित होगा कि त्याग और तपस्या का जीवन व्यतीत करना तथा श्रुति और स्मृति से ओत–प्रोत संस्कृति में घुलमिल कर मधुर वाणी का मधुर प्रवाह ही ऋषित्व की सही पहचान है। ऋषित्व अद्वैतवाद का प्रतीक बन कर चैतन्य ब्रह्म में जीवन को ला पाता है और आपसी द्वैत–भावना को तिलांजलि देकर केवल अद्वितीय ब्रह्म में ही आस्था व्यक्त करता है।

कश्मीर की पवित्र भूमि पर भी ऋषियों ने समय–समय पर जन्म लेकर ब्रह्म के इसी अद्वैतवाद को प्राथमिकता दी और चैतन्य पुरुष को अपने ही अंदर झांकने पर बल दिया। जहां कश्मीर के बाहर विभिन्न भागों में उसी विचारधारा को अपनाने वाले महापुरुषों उदाहरणतः गुरु नानक जी, गुरु रविदास जी, संत कबीर, बाबा फरीद इत्यादि ने जन्म लिया है वहां कश्मीर में भी ऋषिपीर, नुंद ऋषि, लल्लेश्श्वरी, रूप भवानी इत्यादि संतों और दाशर्निकों ने जन्म लिया। इधर कश्मीरी साहित्यकारों ने समय–समय पर वैदिक और भाषाओं से श्रेय पाकर कश्मीरी भाषा को जो वास्तव में इन्हीं आर्य भाषाओं की एक कड़ी है संस्कृत संपर्क से गुणसम्पन्न कर दिया।

कश्मीरी साहित्य को संस्कृत भाषा से शैली, रंगंरूप तथा शब्द प्रवाह की विपुल सामग्री उपलब्ध हुई। कश्मीरी कवि श्री बुलबुल नागामी ने 1829 ई में महाभारत पर आश्रित नल–दमयंती की कहानी अपनी मसनवी काव्यरूप में व्यवहत की। कहने का तात्पर्य यह है कि कश्मीरी कविता चाहे श्रंगारिक हो अथवा आध्यात्मिक – वैदिक और संस्कृत भाषा तथा साहित्य के संपर्क से अछूती न रह सकी।

सूफी शब्द न किसी विशेष धारा की अभिव्यक्ति है और न ही किसी मत का नाम है। सूफी संतों की जीवन पद्धति का नाम है जो ऋषित्व पर ही आधरित है और अपने ही अंदर ईश्वर को टटोलने से उदित आह्लाद में अपने को बहने देने की प्रवृत्ति है तथा यह भक्ति धारा

का ही एक भाग कहलाया गया। सूफी अपने अंदर के अज्ञान से उत्पन्न मलिनता को ज्ञान रूपी प्रकाश से प्रज्वलित करने की शिक्षा देते आए हैं, यही प्रवृति यहां के कश्मीरी साहित्य में भी दृष्टिगोचर होती है।

सूफी आपसी भाईचारा बनाए रखने पर बल देते रहे हैं तथा ईश्वर से अभिन्न तथा अक्षुण्ण संबंध जोड़कर उसकी दृढ़ आस्था में विश्वास करते आए हैं। संक्षेप में सूफीवाद एक ऐसी प्रवृत्ति का नाम पड़ गया जिस की मस्ती में खोकर सूफी ईश्वर का दृढ़ भक्त बनता गया और सारे जीव–जंतु तथा जड़ और चेतन में प्रभु का ही रूप देख कर उसी रूप को अपनी अन्तरात्मा में लीन करता गया। इस कारण सूफीवाद को यदि अध्यात्मवाद के नाम से ही संबोधित किया जाए तो गलत न होगा।

कश्मीरी भाषा का आध्यात्मिक साहित्य लल्लेश्वरी, नुंदऋषि, रूप भवानी इत्यादि ही से आरंभ होता है। लल्लेश्वारी के बारे में अनुमान है कि वह 1335–1350 ई. के बीच ही किसी समय में जन्मीं थी। लल्लेश्वरी ललद्यद शैव दर्शन का मार्ग अपना कर कश्मीरी भाषा में उसी का प्रतिनिधत्व करती हैं। वह शिव को सर्वत्र पाती हैं। उनके अनुसार–

• गगन तू
धरा तू
दिन पवन और रात अर्घ पुष्प पानी चंदन तू
तू ही सर्वत्र तो भेंट करूं क्या ?

• शुद्ध मन से उद्यान द्वार बीच चली मैं
तो देखा शक्ति को शिव में लीन।
स्वयं लीन हुई और पंहुची अमृतसर में जीवन–मुक्त बनूं
मुझे डर किस बात का।

कुछ विद्वानों का यह विचार है कि शैव मत तथा वेदांतों में बहुत ही अंतर है क्योंकि उनके मतानुसार वेदांत प्रभु को सत्य मानता है और जगत जो प्रभु की ही माया है, मिथ्या है। जबकि शिवमत के अनुसार जगत

शिव की छाया है और शिव का सत्य होना ही इस बात का प्रमाण है कि शिव की छाया यानी जगत भी सत्य है। विद्वानों के इस विचार से सहमत होना संभव नहीं क्योंकि वेद और शिवमत वास्तव में एक ही विचारधारा के नाम है। वेद हों या शैव ग्रन्थ दोनों अपने आप को पहचानने का आहवान करते हैं और इस बात को स्पष्ट रूप से व्याख्या करते हैं कि प्रभु हमारे अंदर बसा हुआ है। जिसे ढूंढ निकालने की आवश्यकता है। वैदिक विचारधारा के अनुसार यदि यह कहा जाता है कि जगत मिथ्या है तो उसका अर्थ यह भी लिया जा सकता है कि जगत वास्तव में वह ही नहीं जो हम देख पाते हैं किंतु वह भी है जो हमसे परोक्ष भी है।

लल्लेश्वरी के लिखित वाक् इस बात को प्रमाणित करते हैं कि बंधनों तथा मानसिक अशान्ति से घिरा हुआ यह जगत एक कच्चे धागे के समान है जो नैया को पार लगाने में असफल ही सिद्ध होगा। इसी प्रकार इस जगत में अर्जित सारा कर्म ऐसे नष्ट–भ्रष्ट लगता है जैसे कोरे मिट्टी के बर्तन में पानी जज्ब होता है। इसी कारण लल्लेश्वरी इसी बात की कामना करती है कि प्रभु उसकी आवाज को सुने और उसको नैया सहित इस भवसागर से पार उतारें। यह वाक् इस कारण इस बात को सिद्ध करते हैं कि वेदांत और शैव मत वास्तव में एक ही मूल सिद्धांत के अवलम्बी हैं क्योंकि शैवमत के मतावलम्बी भी इस संसार को प्रभु की निराधार कृति ही मानते हैं।

लल्लेश्वरी प्रभु को सर्वत्र पाकर कण–कण में उसी का स्वरूप देखकर और उसी में लीन होकर बाजारों में मग्न और नग्न घूमती थी। कहते हैं ऐसी ही एक घटना में उनकी भेंट एक ऐसे महान पुरुष से हुई जो ईरान से उन्हीं दिनों कश्मीर आए थे।

यह महान पुरुष थे मीर सय्यद अली हमदानी। उस महान हस्ती को देखते ही लल्लेश्वरी एकदम किसी नानवाई के धधकते तंदूर में कूद पड़ी किंतु दिव्य वस्त्रों से अलंकृत वापस उभर आई। इस घटना से इस बात का संकेत मिलता है कि लल्लेश्वरी जो एक अद्वैतवाद की प्रतीक थी और अपने अनुकूल वातावरण, परिस्थितियों तथा युग में मग्न और नग्न

घूमकर ईश्वर में सदा लीन होती थी, की भेंट एक ऐसे व्यक्ति से हुई जो ईश्वर और आत्मा की सत्ताएं पृथक मानते थे और इन्हीं दो विभिन्न विचारधाराओं में प्रतिरोध को टालने की अपेक्षा से लल्लेश्वरी ने ऐसी वेशभूषा में अपने को ढांपना उचित समझा।

ऐसी ही दूसरी घटना में कहते हैं कि एक दिन अपनी–अपनी विचारधारा को उचित ठहराने की नीति से मीर सय्यद अली हमदानी के कहने पर दोनों ने लुका छिपी का खेल रचाया। पहले मीर सय्यद अली हमदानी अर्न्तधान हो गए और लल्लेश्वरी ने एक वृक्ष से सेब का फल तोड़ा और उस सेब को संबोधित होकर यूं कहने लगी –

"निकलोगे या मुझे सेब काटना पड़ेगा।"

कहते हैं कि मीर सय्यद अली हमदानी उसी समय प्रकट हुए। उसके उपरांत लल्लेश्वरी अर्न्तधान हुई और आश्चर्यजनक रूप से फूलों पत्तों में, वृक्षों, फलों में अर्थात् कण–कण में विद्यमान हुई। मीर सय्यद अली हमदानी के लिए व्यक्ति विशेष की पहचान अति कठिन हुई और लल्लेश्वरी से सामने प्रकट होने के लिए आग्रह करने लगे। लल्लेश्वरी उनके सामने प्रकट हुई और अपने इस सिद्धांत को उचित ठहराया कि ब्रह्म का स्वरूप सर्वत्र है और सारे जीव–जंतु, जड़–चेतन उसी के अंश है। कश्मीरी कवि शमस फकीर ने भी अपनी एक ग़ज़ल में इसी घटना की पुष्टि की है–

ज्ञानी के पहचान की ज्ञान और ध्यान की,
और एकाकार हुआ प्रभु से।

नुंद ऋषि भी लल्लेश्वरी के समकालीन थे। दोनों ने आध्यात्मवाद के रहस्य का प्रचार कश्मीरी कविता के माध्यम से ही किया। विवाह के छः दिन बाद ही नुंद ऋषि ने गृहस्थ से संन्यास धारण किया और गांव–गांव जाकर सांसारिक बंधनों से मोक्ष दिलाने वाले सत्य का अन्वेषण किया।

नुंद ऋषि ने शुद्ध आहार तथा विचार पर बल दिया और दोनों को निजी व्यवहार में लाया। उनके लिखे हुए श्रुत्य तथा लल्लेश्वरी के वाकों में कोई अंतर नहीं दिखाई देता। दोनों की कविता में संस्कृत भाषा का प्रभाव स्पष्ट देखा जा सकता है। वाक् तथा श्रुत्य को संस्कृत भाषा में दोहे तथा श्लोक के नाम से जाना जाता है। नुंद ऋषि कहते हैं।–

नीचे खाई ऊपर से नर्तन कह दो भाई मन कैसे लाग्गे।

आध्यात्मवाद के अतिरिक्त नुंद ऋषि ने इस्लाम के मौलिक सिद्धांतों का भी अपनी कविता के माध्यम से प्रचार किया। किंतु मौलिक रूप से उन पर स्थानीय प्रभाव इतना घनिष्ट पड़ा था कि जिस ऋषित्व की पताका उन्होंने अपने हाथ में ली थी उसके परिवेश में इस्लाम के धर्म को भी लाया जिसका उदाहरण उनके निम्नलिखित भावों में मिलता है–

प्रथम ऋषि अहमद ऋषि
दूसरा हजरत अवैस आया
तीसरा ऋषि जलका ऋषि
चौथा हज़रत मीर आया
पंचम ऋषि रूम ऋषि
छठा हज़रत बिलाल आया।

इसी आध्यात्मिक धारा का तीसरा प्रकाश स्तम्भ रूप भवानी के रूप में उभर कर आया। वह 1677 ई. में माधवजू धर के घर में जन्मी। उनकी अलौकिक बाल लीला और प्रौढ़लीला देख कर उस समय के बड़े बड़े कुलीन सिद्ध महात्मा चकित से रह कर उनकी शरण में आए। उन्होंने अपनी पितृ कुल एवं श्रद्धालु शिष्यों तथा भक्त–जनों का अपनी मातृ भाषा में रहस्योपदेश से उद्धार किया।

ससुराल से सास और पति के दुर्व्यवहार से तंग आकर उन्होंने गृहस्थ आश्रम से संन्यास धारण किया और चट्टा साहिब, वुतजन मनिगाम तथा वासुककुरा गांव में तप और साधना का जीवन बिताने के साथ–साथ

शैवमत के अनुसार कर्म, उपासना और ज्ञान के उपदेश देती रहीं। रूप भवानी ने अपने वाकों में लल्लेश्वरी की शैली को ही अपनाया।

शून्य की खोज कर ढूंढ निकाला
और उसी के चारा मारा
पंचग्नि फिर लाल चढ़ाया
प्रकाश उसी से और उजाला।

आध्यात्मवाद, जिसके बीज कश्मीर की सुंदर वाटिका में भी बोए गए और वो तस्सवुफ के रूप में सुरभित सुमनों से सुगंधित हुआ, प्रत्येक दिशा में एक सा प्रभाव डालता गया। यही कारण है कि चाहे संत कबीर के ये वचन हों–

मो को कहां ढूंढे बंदे मैं तो तेरे पास में।
न मैं मसजिद न मैं मंदिर न काबे कैलास में।।

अथवा कश्मीरी कवि परमानंद के ये वचन–

झांक लो तुम अपने अंदर में
शिव का मंदिर जहां–जहां
उसमें बैठे श्याम सुंदर हैं
राम का जप कर लो वहां–वहां

दोनों में पुष्परूपी वाणियों की महक एक सी है। कश्मीर के एक और आध्यात्मिक कवि स्वच्छकाल जिन के जन्म के बारे में अनुमान है कि वह सन् 1857 ई. में जन्में और अपने बाह्य अस्तित्व को मिटा कर, अपनी आंतरिक शक्ति को पहचान कर, सर्वत्र परमात्मा की ही लीला का आनंद उठाने में मस्त थे। इस प्रकार का चिंतन उसकी कविता के इस पद से सहज ही मिल जाता है–

कहदे रे मन कौन हूं मैं।।

शमस फकीर जो आध्यात्मवाद के एक और दैदीप्तमान कवियों में से थे, का जन्म 1839 ई. के लगभग हुआ था। उनके निम्नलिखित पद्य से उनका सांसारिक बंधनों से मुक्त होना तथा सर्वव्यापी ब्रह्म के आनंदस्वरूप में लीन होना स्पष्ट दिखाई देता है।

अपनी जिसको सुध नहीं है गृहस्थ दोषी कहलाए
चैन कहां उनके सौभाग्य में, जिसने प्रेम रस का पान किया है।

शैवमत के अनुसार अपने ही अंदर सब कुछ होने की भावना को वास्तविक रूप में पहचानने की विधि को प्रत्यभिज्ञा कहते हैं। शमस फकीर की काव्याकला में शैव दर्शन का ऐसा ही आभास मिलता है।

स्वच्छकाल से प्रभावित रहीम साहब भी ईश्वर की प्रेम–पीड़ा सहन करते–करते ईश्वर को पाने की चेष्टा में अपने ही मन को टटोलता रहा। जिसका जीता जागता उदाहरण उनकी कविता का यह अंश है।

जिस में वास करते महेश्वर हैं
उस मन–सर से खोजती हूं मैं निज प्रियतम।

अहमद राह जो श्रीनगर में डलगेट में रहते थे योगी जैसा जीवन बिताते थे। उसने अपने पदों में मन्सूर की विचारधारा की अभिव्यक्ति की है।

इस प्रकार आध्यात्मवाद की विचारधारा को अपनाने वाले कवि कश्मीरी कविता के माध्यम से समय समय पर ऋषि परंपरा को जीवित रखने में अपना योगदान देते रहे। कभी गृहस्थ को त्याग कर तथा कभी

गृहस्थ में ही रह कर परमब्रह्म की ज्योति को साथ–साथ जगाते रहे। उनमें निम्नलिखित नाम उल्लेखनीय हैं।–

अहद ज़रगर, न्याम सॉब, वाज़ महमूद, अहमद बटवारी, वाहब खार, परमानंद, म्यर्ज़ काक, कृष्ण जू राजदान, रहमान डार, समद मीर, ज़िंदा कौल, विष्णु कौल, ठाकुर जू मनवटी, नीलकंठ शर्मा, रच द्यद इत्यादि।

रच द्यद, मास्टर जिंदा कौल तथा अहद ज़रगर गत दशकों के उन उज्जवलतम कवियों में से हैं जिन्होंने विरह व्याथा के साथ–साथ त्याग तथा अनासक्ति की भावना को अपनी कविता में उजागर किया।

आएंगे आज मेरे पिता
फूलों के पथ संवार दूं
हटा कर धूल पापों की
सजा दूंगा मैं मन ग्रह को।

और अहद ज़रगर का यह पद–

संन्यासी बन बैठा जो मैं
प्रभु को पाया कण–कण हर क्षण।।

अंत में इस बात का उल्लेख करना वांछनीय होगा कि वेद और उपनिषदों के सिद्धांतों और दर्शन से जन्में अध्यात्मवाद पर आधरित ऋषित्व समय–समय पर कश्मीरी कविता को भी श्रेय प्रदान करता रहा है।

संस्कृत भाषा के उच्च कोटि के विद्वान, अलबरूनी के मतानुसार आध्यात्मवाद हिन्दू धर्म का मौलिक मत है जिसने अपने परिवेश में इस्लामी धर्म को भी किसी हद तक लाया है। प्रो. ओलेरी का कथन है कि यदि इस्लामी धर्म में सांसारिक बंधनों से अपने आप को मुक्त कराने का कोई

भी उदाहरण मिलता है तो वह केवल बुद्धमत के प्रभाव के कारण ही हुआ है।

उनके अनुसार हिन्दू धर्म तथ इस्लाम दोनों में इस बात की समानता है कि दोनों इस बात से सहमत है कि चैतन्य ब्रह्म अद्वितीय एवं जगत का कारण है। इस तथ्य की अपेक्षा भी हम इसी निष्कर्ष पर पंहुचते है कि दोनों धर्मों में ईश्वर दर्शन की जिज्ञासा तथा ईश्वर प्राप्ति के साधनों में भिन्नता पाई जाती है।

इस्लाम के अध्यात्मवाद के संबंध में भिन्न–भिन्न विचारधारा रखने वाले विद्वानों के मतानुसार अध्यात्मवाद इस्लाम में पराया और विदेशी लगता है क्योंकि उनके मतानुसार इस्लाम जो कुरान और हदीसों पर आधारित है एक व्यवहारिक धर्म है तथा उसमें संसार से विरक्त होने की भावना को किसी भी अवस्था में प्रोत्साहित नहीं किया गया है।

उनका कथन है कि ऐसा दृष्टिकोण या तो शाम के अध्यात्मवाद से आया है अथवा यूनान के अफ़लातूनी दर्शन से या ईरान के प्राचीण धर्म के संपर्क से अथवा भारत के योगियों और ब्राह्मणों के आचार–विचार से। कुछ भी हो ऐसा लगता है कि ऋषित्व का अध्यात्मवाद हिन्दू धर्म के प्राचीण दर्शन वेदांत के संपर्क में आकर कश्मीर की अनुपम वाटिका में यथोचित तथा अनुकूल वातावरण में शताब्दियों से मार्ग दर्शन करता रहा है।

ooo

भाषा चिंतन और रामविलास शर्मा

—ओम निश्चल

इस देश में अंग्रेजी पढ़ कर नौकरशाह बनने तथा अपने रहन—सहन को अंग्रेजियत में ढाल कर रहने वाले लोगों की संख्या कम नहीं है जिनके मन में हिन्दी और हिंदुस्तान नहीं, एक ऐसे मुल्क का नक्शा बनता है जो भारतीयता से लगभग मुँह फेरे रहता है। वहीं दूसरी तरफ अंग्रेजी पढ़ कर रोजी—रोटी हासिल करने वाले किन्तु हिन्दी में आत्मविश्वास के साथ लिखने वाले लेखक भी बहुतेरे हैं पर उनमें रामविलास शर्मा जैसे हिन्दी के हिमायती कितने कम होंगे। उन्होंने बी.ए. करते हुए ही यह निर्णय कर लिया था कि उन्हें हिन्दी में लिखना है, अध्यापक भले ही अंगेजी के हों। वे उस भारतीय परंपरा के लेखक रहे हैं जिन्होंने जीवन भर विचारधारा के स्तर पर मार्क्सवाद की वैचारिकी अपनाई पर उसकी जड़ लीक को तोड़ कर अपने उत्तर जीवन में वैदिक वाड्.मय का अध्ययन अनुशीलन किया तथा मार्क्सवाद के अंतविर्रोध को भी उजागर करते रहे।

वे एक तरफ अपनी सदियों पुरानी परंपरा का अनुशीलन—विवेचन करतेय दूसरी तरफ आधुनिकता को प्रभावित करने वाले कारकों पर अपनी दृष्टि जमाए रहे। कहना न होगा कि उनकी वैचारिकी न तो मार्क्सवाद को कमतर आँकती थी न मम्मट, विश्वनाथ और भारतीय परंपरा के आचार्यों के मत को संदेह की निगाह से देखती थी। इसीलिए उनके वैचारिक परिसर में जहॉ मार्क्सवादी लेखक आते हैं वहीं तुलसीदास, निराला, महावीर प्रसाद द्विवेदी, भारतेंदु हरिश्चंद्र और आचार्य रामचंद्र शुक्ल जिन पर उन्होंने भी लिखा है। एक प्रश्न के उत्तर में उन्होंने कहा था, मैने बहुत लोगों पर

लिखा है, वे सब मार्क्सवादी नहीं हैं। वे कहते थे, मार्क्सवाद एक दृष्टि है, एक समझने का तरीका है, और वह समझने का तरीका भी ऐसा नहीं है कि वह बिल्कुल नपा तुला हो और हर जगह उसी लीक पर चलो, उसमें काफी लचीलापन है।

इसी लचीलेपन के कारण वे तुलसी की ओर गए, निराला की ओर गए, भारतेंदु को विवेचित किया, उत्तर जीवन में वैदिक विवेचन की ओर अग्रसर हुए। उनकी प्रज्ञा गतिशील थी जैसे मार्क्सवाद गतिशील है, जड़ नहीं है पर जड़ मार्क्सवादियों ने उनके उत्तर जीवन की इस रुझान पर प्रहार किया। नामवर सिंह ने उसे 'इतिहास की शवसाधना' कह कर उसका उपहास उड़ाया और आलोचना में उनके मताग्रहों पर प्रहार किया जिसकी व्यापक और तीखी प्रतिक्रिया हुई। पर रामविलास जी ने अंत तक अपने अध्ययन की दिशा नहीं बदली।

हिन्दी और भारतीय भाषाओं के हिमायती–

रामविलास शर्मा के अध्ययन का दायरा बहुत बड़ा था। वे केवल निराला की साहित्य साधना के तीन भाग लिख कर भी आलोचना में अमर हो सकते थे किन्तु उन्होंने प्रेमचंद और उनका युग, आचार्य रामचंद्र शुक्ल और हिन्दी आलोचना, भारतेंदु हरिश्चंद्र और नवजागरण, महावीरप्रसाद द्विवेदी और नवजागरण, मार्क्स और पिछड़े हुए समाज जैसे विषयों को केंद्र में रखा। वे मार्क्स के अध्येता थे तो ऋग्वेद के अध्येता भी। वे एक साथ कवि, आलोचक, इतिहासवेत्ता, भाषाचिंतक, राजनीतिविशारद सब कुछ थे। भारत की भाषा समस्या को लेकर वे गंभीरता से कार्यरत रहे।

इसीलिए जहाँ उन्होंने हिन्दी भाषा की विकास परंपरा को समझने की चेष्टा की, भारत के प्राचीन भाषा परिवार और हिन्दी की भूमिका को विवेचित किया, वहीं भाषा और समाज, भाषा साहित्य और जातीयता तथा भाषा और युगबोध पर विस्तार से विचार किया। उन्होंने भाषा को एक बड़े सांस्कृतिक राजनैतिक व सामाजिक फलक पर रख कर देखा तथा भारतीय संदर्भों में हिन्दी व अन्य भारतीय भाषाओं की आंतरिक समस्याओं पर गहराई से विचार किया।

भारत जैसे बहुभाषाभाषी देश में जहाँ विविधता में एकता का समाहार माना जाता हो, वहाँ भाषाओं को लेकर द्वंद्व भी पैदा होते रहते हैं। बहुभाषी देश होने के साथ यह बहुसांस्कृतिक देश भी है। विभिन्न भाषाभाषियों के बीचे दूरियाँ भी कम नहीं हैं संप्रेषण के स्तर पर किन्तु हिन्दी संपर्क की दृष्टि से एक कड़ी का काम तो करती ही है। सदियों औपनिवेशिक सत्ता के अधीन रहते हुए हिन्दी आजादी के संघर्ष के दौरान राष्ट्रीय असमिता की भाषा बनी तथा वह सर्वसाधारण द्वारा स्वीकार की गयी तथा वह अपनी ही भारतीय भाषाओं के बीच एक कड़ी के रूप में विकसित हुई।

उसकी इसी स्वीकार्यता का परिणाम है कि जब भारत के संविधान में राजभाषा के मसले पर संसद में चर्चाएं हुईं तो अनेक हिन्दीतर भाषाभाषी हिन्दी के इस महत्व को समझते हुए हिन्दी के पक्ष में खड़े हुए और भारत की संविधान सभा को हिन्दी को राजभाषा के रूप में स्वीकार करना पड़ा। जहाँ तक भाषाई असमिता का प्रश्न है, रामविलास शर्मा मानते हैं कि श एक भाषा बोलने वाली जाति की तरह अनेक भाषाएँ बोलने वाले राष्ट्र की भी असमिता होती है। संसार में अनेक राष्ट्र बहुजातीय हैं, अनेक भाषाभाषी हैं। जिस समय राष्ट्र के सभी तत्वों पर मुसीबत आती है तब उन्हें अपनी राष्ट्रीय असमिता का ज्ञान बहुत अच्छी तरह हो जाता है।श (परंपरा का मूल्यांकन, पृष्ठ 14)

रामविलास शर्मा ऐसे पहले आलोचक हुए जिन्होंने हिन्दी की जड़ों को सींचने वाले व उसे एक समृद्ध व आधुनिक भावबोध की भाषा के रूप में विकसित व स्थापित करने वाले लेखकों की साधना को विवेचित किया। भारतेंदु हरिश्चंद्र ने निज भाषा उन्नति अहै ३की बात कही थी। उन पर उन्होंने दो पुस्तकें लिखीं३ 'भारतेंदु युग' और 'भारतेंदु हरिश्चंद और नवजागरण की समस्याएं'। कितनी कम उम्र पाई भारतेंदुजी ने और कितना बड़ा काम किया हिन्दी की असमिता की रक्षा के लिए।

भारतेंदु उस युग के पुरोधा थे कि निराला भी उनकी जन्मशती के अवसर पर यह कहने में सुख पाते थे कि श्श्मैं उनके दरबार का एक दरबान मात्र हूँ।श्श न वे परदेशी वस्तुओं के हामी न रहे पर परदेशी भाषा

के। उनके अनुयायी कवि प्रेमघन शुरू में तो अंग्रेजों के मुखापेक्षी रहे पर अंततरू वे ब्रितानी राज के घोर विरोधी हुए व हिन्दी के समर्थक कहे गए। कहा जाता है भारतेंदु की इच्छा थी कि एक हिन्दी की युनिवर्सिटी स्थापित हो जो उनके काल में न हो सकी। वे लोगों की इस बात को अस्वीकार करते हैं कि भारतेंदु का भाषा व साहित्य संबंधी आंदोलन सांप्रदायिक था।

हिन्दी लेखकों की दुनिया–

रामविलास शर्मा ने ऐसे हिन्दी लेखकों के गुण गाए जिन्होंने अपनी संपतति हिन्दी की सेवा में लगा दी। भारतेंदु जी ने निजी धन से पत्रिकाएँ निकालीं, विभिन्न विधाओं में हिन्दी में लेखन को प्रोत्साहित किया। एक युग खड़ा किया हिन्दीभक्त लेखकों कवियों का। वे आधुनिक हिन्दी के जन्मदाताओं में थे। उनसे पहले हिन्दी की बोलियों में तो प्रभूत साहित्य था पर खड़ी बोली में नहीं।

भारतेंदु जी ने हिन्दी की खड़ी बोली का नया ठाठ खड़ा किया और 1873 ईस्वी में लिखा कहा कि हिन्दी नयी चाल में ढली। महावीरप्रसाद द्विवेदी पर भी रामविलास शर्मा ने बड़ा काम किया। एक भाषा के रूप में व हिन्दी के साहितियक अवदान को समृद्ध करने में उनके और सरस्वती के प्रयत्नों को रेखांकित किया। यही नहीं द्विवेदी और नवजागरण के बृहत्तर प्रभावों का अलग से अध्ययन किया। उस वक्त का कौन–सा बड़ा लेखक नहीं है जो सरस्वती में न छपता रहा हो।

आधुनिक हिन्दी के लेखकों के लिए सरस्वती एक प्रशिक्षण का मंच था। प्रेमचंद, मैथिलीशरण गुप्त, कामताप्रसाद गुरु, गणेशशंकर विद्यार्थी जैसे हिन्दी के अग्रदूत उसी दौर में पैदा हुए। द्विवेदी जी हिन्दी के कितने बड़े सेवक थे कि रेलवे की 200 रूपये की नौकरी छोड़ कर 20 रूपये पगार पर सरस्वती की संपादकी स्वीकार की। यह उन्हीं का दिया मूलमंत्र था जो विद्यार्थी जी द्वारा संपादित प्रताप पत्रिका का ध्येय वाक्य बन गया था रू जिसको न निज गौरव तथा निज देश का अभिमान है। वह नर नहीं नरपशु निरा है और मृतक समान है। जिस तरह से सरस्वती के माध्यम से

द्विवेदी ने समकालीन लेखकों की भाषा में यथावश्यक सुधार किया करते थे वैसे उदाहरण आज विरल ही होंगे।

वे अंग्रेजी की शिक्षा–दीक्षा के प्रभाव को लेकर पूँजी का दबाव मानते थे। देश की राजभाषा तो हिन्दी है किन्तु व्यवहार में वह आज तक निरीह बनी हुई है जिससे लगता है कि संविधान निर्माताओं की इच्छा हिन्दी को लेकर साफ नहीं है–––इस बाबत एक सवाल के उत्तर में उनका कहना था, आप सरकार की बात क्यों करते हैं, भारत के पूँजीपति भी राष्ट्रीय अखबार किस भाषा में निकालते हैं। विदेशी पूँजी लगाने वाले भी अंग्रेजी के प्रचार पर बराबर ध्यान देते हैं। वे मानते थे कि अंगेजी के प्रभाव के बढ़ने का अर्थ है कि देश पर विदेशी पूँजी का प्रभाव है। वे कहते थे अखिल भारतीय सेवाओं में अंग्रेजी है, साक्षात्कार में परीक्षार्थी अंग्रेजी कैसेबोलता है इसे देखा जाता है, ह्यूमनिटीज के विषयों की जो गोष्ठियां होती हैं उनमें पेपर अंगेजी में पढ़े जाते हैं। अंग्रेजी जैसे कि सांस्कृतिक भाषा बन चुकी है यह तथ्य स्वीकार करना होगा। (मेरे साक्षात्कार, पृष्ठ 235) कई राज्यों में उर्दू को राजभाषा बनाए जाने के मसले पर उनका कहना था कि मुझे सरकार से ज्यादा वामपंथी पार्टियों से शिकायत है।

कश्मीर में राजभाषा कौन सी है उर्दू। कश्मीर में कश्मीरी भाषा बोली जाती है कि नहीं। तो आप कश्मीरी के अधिकार के लिए क्यों नहीं लड़ते। वहाँ लददाख के लोग रहते हैं जिनकी भाषा कश्मीरी नही है। तो लद्दाखी के लिए क्यों नहीं लड़ते। जम्मू में कश्मीरी नहींडोगरी बोली जाती है तो आप डोगरी के अधिकार के लिए क्यों नहीं लड़ते। वे कहते थे, कश्मीर में चुपचाप उर्दू का समर्थन करना और कश्मीरी के हक को दबाना और उर्दू को अलग भाषा मान कर उसका समर्थन करना यह कहाँ का न्याय है। इस तर्क से वे कहते थे कि ऐसे हालात में बंगाल व महाराष्ट्र में हिन्दी को दूसरी राजभाषा का दर्जा क्यों न दिया जाए।

(मेरे साक्षात्कार, पृष्ठ 239)

वैदिक अध्ययन एवं मीमाँसा के पीछे भी उनकी एक सुनिश्चित धारणा थी। वे मानते थे कि ऋग्वेद वास्तव में कर्मकांड का विरोधी है। किन्तु कर्मकांडी पंडितों ने वैदिक ऋचाओं का दुरूपयोग किया है। वे कहते

हैं वैदिक साहित्य की मूल धारा जीवन की स्वीकृति की धारा है। वह संसार के मिथ्या होने का प्रचार नहीं करती। यही कारण है कि वे उत्तर जीवन में वैदिक जड़ों तक गए क्योंकि वहाँ जीवन का उत्स उन्होंने देखा।

हम पुनः लौटें भाषाई असमिता को लेकर रामविलास शर्मा की स्थापनाओं पर। एक बार यह सवाल किए जाने पर कि श्क्या प्रशासन अध्ययन व अनुसंधान में अंग्रेजी के वर्चस्व को रोकना संभव है, उन्होने कहा था, श्श्मैं यह नहीं मानता कि अंग्रेजी का वर्चस्व खत्म नही हो सकता।शर्त यह है कि सबसे पहले जिनकी मातृभाषा हिन्दी है, जिनकी जातीय भाषा हिन्दी है और जो सबसे आगे हिन्दी का झंडा लेकर चलते हैं, वो संगठित हों।श्श जहाँ तक भाषा और समाज पुस्तक में उन्होंने भाषा के उदभव और विकास के मूलगामी प्रश्नों की चर्चा की है, 'भारत की भाषा समस्या' को लेकर उन्होंने एक अलग ही किताब लिखी जिसमें उन्होंने भाषा और राष्ट्रीयता, हिन्दी का संस्कृतीकरण, राष्ट्रभाषा हिन्दी और हिंदू राष्ट्रवाद, भाषा और प्रांतीयता, हिन्दी भाषी क्षेत्र में हिन्दी प्रचार की आवश्यकता, गाँधी जी और भाषा–समस्या, सरकारी कोशकार और राष्ट्रभाषा, राष्ट्रभाषा और राष्ट्रीय प्रभुसत्ता, राजनैतिक नेता और हिन्दी व जातीय भाषा के रूप में हिन्दी के प्रसार आदि विषयों पर लेख शामिल किए हैं।

समावेशी भाषा–चिंतन–

रामविलास शर्मा के भाषाचिंतन में हिन्दी और समस्त भारतीय भाषाएँ शामिल थीं। वे कहते थे, जो भारत की जलवायु में पला है, उसे भारत की भाषा और संस्कृति अपनानी होगी, उसे भारत की ही महत्ता का स्वप्न देखना पड़ेगा। 1939 में उन्होंने लिखा कि जब हम देश से प्रेम करना सीखेंगे तब उसकी भाषा से भी प्रेम करेंगे। (भारत की भाषा समस्या, पृ 25) हिन्दी में एक राष्ट्रीयतावादी संस्कृतवादी संप्रदाय रहा है जो संस्कृतनिष्ठ हिन्दी पर बल देता था।

डॉ. शर्मा हिन्दी के संस्कृतीकरण के विरुद्ध थे। उनका कहना था श्श्इससे वह राष्ट्रभाषा बनना तो दूर, प्रांतीय भाषा के रूप में भी लोकप्रिय न हो पाएगी।श्श (वही, पृ46) उन्होंने यत्र–तत्र अंग्रेजी के हिमायतियों व अंग्रेजी प्रेमी भारतवासियों की पूरी खबर ली है। उनका कहना था हमें हिन्दी के आगे बोलियों को तरजीह नही देनी चाहिए। उनका कहना था कबीर ने मध्यकाल के कवि होते हुए भी भोजपुरी में नहीं लिखा। उनकी भाषा में खड़ी बोली के तत्व प्रबल हैं। दूसरे डॉ शर्मा यह भी मानते थे कि भारतीय एकता के लिए हिन्दी भाषी जनता की एकता आवश्यक है। हिन्दी राजकाज की भाषा बने इससे पहले उसे शासन और संस्कृति दोनों की भाषा बनाना आवश्यक है तथा भाषाई समस्याओं के निवारण के लिए हिन्दी भाषा के लेखकों का संगठन भी आवश्यक है।

आज देखा जाए तो लेखक संगठन तो हमारे यहाँ हैं पर वे विचारधारा के आधार पर बँटे हैं। दूसरे उनके यहाँ भाषा को लेकर कोई चिंता नही है। यहाँ तक कि नई शिक्षा नीति के मसौदे पर हाल मे कोई लेखक संगठन अपने ठोस तर्कों के साथ सामने आया हो, ऐसा नहीं है। सब तीन कनौजिया तेरह चूल्हे में बॅटा हुआ मामला हैय वरना नई शिक्षा नीति मे त्रिभाषा सूत्र के मसले पर दक्षिण से होने वाले विरोध का लेखक संगठनों द्वारा माकूल जवाब दिया जाना चाहिए था।

हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि हिन्दी को खड़ा करने में अंग्रेजी में तालीमयाफ्ता लेखकों का बड़ा योगदान रहा है। हिन्दी साहित्य के इतिहास पर नजर डालें तो अनेक लोकप्रिय और दिग्गज लेखक मिलेंगे जिन्होंने अंग्रेजी में पढ़ाई की, अंग्रेजी की नौकरी कीय किन्तु लिखने के लिए कलम उठाई तो उन्हें जन–जन में बोली व समझी जाने वाली हिन्दी ही याद आई। ऐसे कुछ लेखकों में दिग्गज आलोचक रामविलास शर्मा प्रमुख हैं जिन्होंने अपना पूरा जीवन हिन्दी के लेखकों, कवियों को अग्रसर करने, भारतीय भाषाओं के साथ हिन्दी के व्यक्तित्व विकास एवं भाषा और समाज व भारत की भाषाई और जातीय समस्याओं के अध्ययन में खपा दिया।

अपने एक लेख में उन्होंने कितना खुल कर कहा था कि, श्श्हिन्दी भाषी तथा समस्त भारतीय जनता का हित इसी में है कि अंग्रेजीदां

नौकरशाही का वर्गजल्दी से जल्दी शासन तंत्र से दूर हो, तभी देश की समस्त भाषाएँ जनता की सामाजिक और सांस्कृतिक उन्नति का साधन बनेंगी और भारत अपनी प्रभुसत्ता को पूरी तरह चरितार्थ करेगा। (भारत की भाषा समस्या, पृ 180) किन्तु आज हम यह जानते हैं कि राजभाषा नीति ने हिन्दी के हाथ बाँध रखे हैं। शिक्षा नीति पर भी नौकरशाही की छाया है। लिहाजा न उच्चतर सेवाओं में हिन्दी व भारतीय भाषाओं के विकल्प की कोई पुख्ता सुविधा है न पठन पाठन में माध्यम के रूप में हिन्दी की कोई जगह बन सकी है। हिन्दी तो हिन्दी, मानविकी के विषयों की ओर बच्चों का रुझान कम हुआ है और अधिकांश होनहार पीढ़ी अंग्रेजीचालित मेडिकल–तकनीक की पढ़ाई में ही अपना बेहतर भविष्य देखती है। ऐसे में क्या हिन्दी के ऋषितुल्य भाषाचिंतक रामविलास शर्मा का सपना कभी साकार हो सकेगा?

ooo

लदाख में भोटी भाषा तथा साहित्य का विकास

डॉ. प्रदीप कुमार दास
नव नालन्दाो महाविह्यनालन्दाr

भाषाओं के पारिवारिक विभाजन की दृष्टि से भोटी भाषा तिब्बत - बर्मी परिवार की तिब्बती -चीनी शाखा की अन्यतम शाखा तिब्बती - हिमालयी भाषा परिवार से सम्बद्ध है, जो कि भारत के पश्चिमोत्तर प्रान्त से लेकर समस्त हिमालयी क्षेत्रों- जम्मू-कश्मीर, हिमाचल प्रदेश, उत्तराखण्ड, पश्चिम बंगाल तथा अरुणाचल प्रदेश के जनजातीय लोगों की मातृभाषा है। भोटी भाषा का अपना स्वतन्त्र भाषिक मूलाधार है तथा इसकी स्वतन्त्र संरचनात्मक ढांचा एवं भाषिक विशेषताएँ हैं।

लदाख के सन्दर्भ में यह उल्लेखनीय है कि यहाँ के प्रबुद्ध वर्ग तथा धार्मिक सन्दर्भ में इसे 'छोस-स्कद' (धर्म-भाषा) कहा जाता है तथा सामान्य बोलचाल में इसे 'ल-द्वगस्–क्यी स्कद्', 'लदाखी-स्पेरा', 'बोद-यिग', 'बोधी', भोटी भी कहा जाता है।

लदाख में भोटी भाषा के प्रयोग के सन्दर्भ में यह उल्लेखनीय है कि व्यावहारिक स्तर पर इसमें द्वैधता की स्थिति देखी जाती है , अर्थात् इसके साहित्यिक प्रयोगों में अथवा शिक्षण में तो इसके परम्परागत भोटी

भाषा का प्रयोग किया जाता है , परन्तु लोक-व्यवहार (बोलचाल) के स्तर पर कुछ स्थानीय शब्दों को जोड़कर इसे लदाखी स्वरूप में परिणत कर दिया जाता है।

लदाख के भिक्षुगण बीसवीं शताब्दी के पाँचवे दशक तक धर्म - दर्शन में उच्च अध्ययन हेतु तिब्बत के बौद्ध महाविहारों में जाते रहे। हालांकि यह परम्परा अब अवरुद्ध हो चुकी है , परन्तु भोटी भाषा में शिक्षण-प्रशिक्षण की परम्परा अभी भी यथावत् जीवन्त है। देश -काल के अनुसार साहित्य-सृजन एवं संचार माध्यमों में कुछ स्थानीय भाषिक तत्त्वों के साथ भोटी भाषा का प्रयोग सर्वाधिक होता है , यद्यपि व्याकरणिक रचना का आदर्श अभी भी शास्त्रीय भोटी अभिरचनाओं के अनुरूप है।

बौद्ध धर्म दर्शन से सम्बन्धित त्रिपिटक एवं बौद्ध आचार्यों की कृतियाँ तथा उन पर आचार्यों द्वारा रचित टीका -अनुटीकाओं का विपुल भण्डार भोटी भाषा में सुरक्षित है। बौद्ध धर्म दर्शन से सम्बन्धित संस्कृत में रचित हजारों महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों के अनुवाद भोटी भाषा में आज भी सुरक्षित हैं, जबकि संस्कृत के अधिकांश मूल-ग्रन्थ अब नष्ट हो चुके हैं। आज भोटी भाषा में अनुदित उन्हीं ग्रन्थों के पुन : संस्कृत एवं अन्य भाषाओं में पुनरुद्धार के कार्य हो रहे हैं। इन कार्यों में अन्य संस्थानों के अतिरिक्त केन्द्रीय बौद्ध विद्या संस्थान , लेह तथा सारनाथ स्थित केन्द्रीय तिब्बती विश्वविद्यालय का योगदान विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

सातवीं शताब्दी ईस्वी में भोट देश के महान् एवं प्रभावशाली राजा स्त्रोङ-चन गम्पो के काल में सर्वप्रथम भोट लिपि का आविष्कार हुआ।

उस समय तक भोट देश (तिब्बत) में किसी प्रकार की लिपि की व्यवस्था नहीं थी। बौद्धधर्म का प्रवेश भोट देश में हो चुका था। भोट देश में बौद्धधर्म से सम्बन्धित अनेक ग्रन्थ संस्कृत भाषा में उपलब्ध थे जिससे वहाँ के अधिकांश लोग लाभ नहीं उठा पा रहे थे। वहाँ के तत्कालीन राजा चाहते थे कि बौद्ध धर्म के उन ग्रन्थों को एक ऐसी भाषा में अनुवाद किया जाय जो भोट देश के लोगों के लिए सुलभ और उच्चारण करने में ग्राह्य हो।

इसी बात को ध्यान में रखकर राजा स्रोङ-चन गम्पो ने सन् 633 ईस्वी में थोनमी सम्भोट नामक एक प्रसिद्ध युवा भोट विद्वान को बौद्धधर्म तथा भारतीय लिपियों के अध्ययन के लिए भारत भेजा। उस समय थोनमी की आयु 15 वर्ष की थी। वे तिब्बत के ग्जङ नामक प्रदेश के थोन नामक ग्राम के निवासी थे। थोनमी सम्भोट ने नालंदा स्थित ब्राह्मण लिपिकार से ब्राह्मी तथा खरोष्ठी आदि लिपियों का अध्ययन किया। बाद में उन्होंने तत्कालीन गुप्तकालीन लिपियों का भी अध्ययन किया। उन्होंने भारत में देवविद्या सिंह के सम्पर्क में रहकर बौद्धधर्म तथा दर्शन का गम्भीर अध्ययन करने के पश्चात् 640 ईस्वी में अपने स्वदेश लौट गये।

भोट लिपि का उद्भव और विकास

सात वर्षों तक भारत में अध्ययन के उपरान्त अपने देश पहुँचकर थोनमी सम्भोट ने भारतीय लिपियों के आधार पर भोट लिपि की रचना की। उन्होंने न सिर्फ भोट लिपि की रचना की वरन् उन्होंने आठ अवकाशों से युक्त एक व्याकरण की रचना भी की। परन्तु वर्तमान में

प्रथम अवकाश का पंचम परिवर्त त्रिंशद् (सुम-चु-पा) और द्वितीय अवकाश का छठा परिवर्त लिङ्गावतार (तगस्–जुग) को छोड़कर शेष छ : अवकाश लुप्त है और विद्वानों को उनके नाम तक ज्ञात नहीं हैं। कुछ विद्वानों का मानना है कि नौवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में लङदरमा नामक कुख्यात भोट राजा ने शेष छः अध्यायों को जलाकर नष्ट कर दिया।

संभोट ने संस्कृत के सोलह स्वरों में से आ , ई, ऋ, ऌ, ऐ, ओ, अं, अः तथा तैंतीस व्यञ्जनों में से घ , झ, द, ध, ट, ठ, ण तथा क्ष अक्षरों को भोट लिपि में स्थानीय उच्चारण की दृष्टि से अनावश्यक समझा। अत : उन्होंने स्वरों में से केवल अ , इ, उ, ए, ओ पाँच को ही भोट लिपि में स्थान दिया और स्वर आ को हटाकर व्यञ्जनों के अन्त में रख दिया। इसके अतिरिक्त उन्होंने कुछ ऐसी ध्वनियाँ , जो भोट समाज में व्यवहृत थे, को भोट लिपि में जोड़ दिया। उदाहरणस्वरूप .च, .छ, .ज, .श आदि छः नये अक्षरों की रचना कर इसे व्यञ्जनों में जोड़ दिया गया। इस प्रकार भोट लिपि में इनकी संख्या कुल तीस हो गई।

भोट लिपि के उद्भव के विषय में तीन प्रकार के सिद्धान्त प्रचलित हैं। पहले सिद्धान्त के अनुसार भोट लिपि की उत्पत्ति नागरी लिपि के आधार पर हुई है , जैसा कि ''म्खस-पई म्गुल-र्ग्यन मु-तिग हप्रâेड-ब ेशेस'' नामक तिब्बती व्याकरण की पुस्तक में कहा गया है। इस पुस्तक को संक्षेप में ''सि-तुई ग्सुम-र्तगस्'' भी कहा जाता है। इस पुस्तक में कहा गया है-

थोनमी सम्भोट ने भोट लिपि को
नागरी लिपि के आधार पर मारू (तिब्बत की

राजधानी ल्ह-स) के किला में

भारत से आने के बाद तैयार किया...

दूसरे सिद्धान्त के अनुसार भोट बु -चन लिपि का निर्माण लऩ्चा लिपि के आधार पर तथा भोट बु -मेद लिपि का निर्माण वर्तु लिपि के आधार पर हुआ है-

मञ्जुश्री के प्रतीक महान् धर्ममन्त्री

थोनमी सम्भोट ने लऩ्चा और वर्तु लिपियों

को आधार मानकर दबु-चन और

दबु-मेद लिपियों का आविष्कार किया ...

तीसरे सिद्धान्त के अनुसार भोट बु -चन लिपि का आधार गुप्त लिपि है जबकि बु -मेद स्वाभाविक रूप से बु -चन लिपि से ही बना है। अमदो गेदुन कोम्फेल ने इस सिद्धान्त की भरपूर आलोचना करते हुए कहा कि भोट बु-चन और बु-मेद लिपियों का आविष्कार लऩ्चा और वर्तु लिपियों के आधार पर ही किया गया। उन्होंने अपने मत के समर्थन में प्रसिद्ध तिब्बती इतिहासकार गो लो .चावा .शोनू लोडोस उर्फ येसङ छेपा (1372-1481) का हवाला भी दिया। उनके अनुसार लऩ्चा लिपि का आविष्कार तो बहुत बाद में हुआ प्रतीत होता है। प्रसिद्ध लिपि विज्ञानी जी. बुहलर के कलेक्शन ऑफ इंडियन पैलियोग्राफी से इस बात का पता चलता है कि लऩ्चा और वर्तु लिपियों का समय 11वीं शताब्दी से पूर्व का नहीं है अर्थात् थोनमी सम्भोट के समय से 400 वर्ष बाद का है।

थोनमी सम्भोट ने भोट लिपियों तथा व्याकरण की रचना करने के बाद चार वर्षों तक राजा स्रोङ-चन गम्पो को अक्षरों तथा व्याकरण का

विधिवत् अध्ययन कराया और इसके बाद एक स्तुति की रचना की। थोनमी सम्भोट के प्रयासों से प्रसन्न होकर राजा ने राज दरबार में थोनमी का अभिनन्दन करने का निश्चय किया। परन्तु राज दरबार के अन्य मंत्री एवं अधिकारीगण अपनी उपेक्षा होने के कारण थोनमी सम्भोट से ईर्ष्या करने लगे। जब थोनमी को इस बात का पता चला , तब उन्होंने अपने सहयोगियों एवं मंत्रियों के लिए भोटी में एक कविता की रचना की, जिसका रूपान्तरण इस प्रकार है-

मैं थोनमी धन्य आत्मा हूँ,
क्योंकि मैंने दुर्गम आर्यावर्त में जाकर

अत्युष्ण शीत में तपस्या की,

मनीषी विप्र लिपि का सदा

मन से सम्मान किया।

धन-रत्न-स्वर्ण दक्षिणा दी,

अलभ्य अक्षर मुझे सिखाया उन्होंने,

संशय मन से सारा मिटाया,

पद-स्वरों में पटुता पाया।

भारत के पचास अक्षरों को,

भोटी में तीस अक्षरों में ही सुनिश्चित किया,

स्वयं को विद्वान होने का अनुभव किया।

इहलोक आनन्दित, परलोक सुखी है।

देशान्त भोट देश में

प्रथम विद्वान बनकर आया हूँ,

अंधकार नाशक प्रदीप हूँ मैं।

नरपति रवि-शशि सम रहे,

सुहृदय आत्माओं में सम्भोट जैसा नहीं कोई

भोट हिमालय के लोग,

क्या थोनमी के आभारी नहीं रहेंगे?

इस प्रकार थोनमी सम्भोट ने राज दरबार के मन्त्रियों एवं अधिकारियों द्वारा उनके विरुद्ध उत्पन्न द्वेष एवं दुर्भावना को शान्त कर दिया। इसके बाद से उन लोगों के मन में थोनमी के प्रति सम्मान की भावना जाग्रत हुई। राजा स्रोङचन गम्पो ने देश की जनता को सही मार्ग दिखाने में बौद्ध साहित्य को सर्वथा उपयुक्त समझते हुए उसके प्रचार-प्रसार का भार स्वयं संभाल लिया और बौद्धधर्म दर्शन से सम्बन्धित अनेक ग्रन्थों का संस्कृत से भोटी भाषा में अनुवाद करने की उन्होंने एक महत्त्वाकांक्षी योजना की शुरुआत की। भोट राजा की इस योजना को कार्यरूप देते हुए थोनमी सम्भोट ने संस्कृत के अनेक बौद्ध ग्रन्थों का भोटी भाषा में अनुवाद किया , जिनमें समुच्चयरत्नकेतु , चन्द्रपदरत्नमेघ, अमोघपाश, चिन्तामणिधारणी, षडाक्षरसूत्र, सद्धर्मपुण्डरीकसूत्र आदि ग्रन्थ सम्मिलित हैं।

आठवीं शताब्दी में स्रोङचन गम्पो के प्रपोत्र ठिछुग -दे (705-758) के समय में बौद्धधर्म दर्शन तथा साहित्य का व्यापक विकास हुआ। राजा

ठिसोङ देउचन (755-797) के शासनकाल में तिब्बत में सबसे पहले समये नामक बौद्ध विहार की स्थापना की गई। उस समय भारत के सुविख्यात् पंडित आचार्य शान्तरक्षित तथा आचार्य पद्मसम्भव आदि अनेक विद्वानों को भोट देश में आमन्त्रित किया गया तथा 108 भारतीय विद्वानों के सहयोग से बौद्धधर्म से सम्बन्धित संस्कृत भाषा में रचित ग्रन्थों का भोटी भाषा में अनुवाद किया गया , जो आज भी भोटी भाषा में सुरक्षित हैं, जबकि उनके मूल संस्कृत भाषा के ग्रन्थ अब लुप्त हो चुके हैं।

लदाख में भोटी भाषा का साहित्यिक अवदान

लदाख में ऐसी मान्यता है कि तिब्बत के राजा स्रोङचन गम्पो के योग्य मन्त्री रल-पा चन, जो लदाख के निवासी थे, ने थोनमी सम्भोट को अध्ययन हेतु कश्मीर भेजने में महत्वपूर्ण योगदान दिया था। प्राचीन काल में लदाख में भाषा का स्वरूप कैसा था और यहाँ के लोग किस भाषा का प्रयोग करते थे , यह निश्चित रूप से कहना असम्भव है। प्रसिद्ध इतिहासकार एवं लदाखविद् ए.एच. फ्रैंके को खल्चे स्थित सिन्धु नदी पर बने एक पुराने पुल के समीप कुछ शिलालेख प्राप्त हुए थे , जिनके विषय में उनका कहना है कि ये पुरातन शिलालेख ब्राह्मी , खरोष्ठी एवं शारदा लिपियों में उत्कीर्ण हैं। इस सन्दर्भ में उनका यह भी कहना है कि उस काल में यहाँ पर भोटी भाषा का प्रचार -प्रसार न होने के कारण यहाँ के लोग सम्भवत: किसी प्राकृत भाषा का प्रयोग करते होंगे।

जैसा कि ऊपर कहा गया है कि भोटी भाषा का अंकुरण एवं विकास लदाख की भूमि में नहीं हुआ था। यह भाषा इस क्षेत्र पर तिब्बत के शासकों द्वारा राजभाषा के रूप में आरोपित की गयी थी। अत : लदाख

में इस भाषा का प्रारम्भ 10वीं-11वीं शताब्दी में इसके शासकों द्वारा राजाज्ञा द्वारा आरोपित की गयी भाषा के रूप में हुआ। कहा जाता है कि सन् 1215 में राजा डोसडुब गोन ने अपने प्रशासनाधीन क्षेत्र में भोट लिपि एवं भाषा का प्रयोग अनिवार्य कर दिया था। दा, हानु क्षेत्र में प्रचलित एक जनश्रुति के अनुसार तिब्बती शासकों ने यहाँ के दरद भाषाभाषी लोगों पर अपनी भाषा का प्रयोग करने पर प्रतिबन्ध लगा दिया तथा भोटी भाषा का प्रयोग न करने पर भारी दण्ड दिये जाने का प्रावधान कर दिया था।

इस सन्दर्भ में राजाओं द्वारा आदेश भी पारित किये गये जिसके अनुसार धार्मिक विधि-विधानों के प्रशिक्षण एवं उच्च धार्मिक अध्ययन के लिए भिक्षुओं को तिब्बत भेजने का प्रावधान था। फलस्वरूप इस क्षेत्र के भिक्षुओं के लिए न सिर्फ धार्मिक ग्रन्थों के अध्ययन के लिये अपितु धर्मनिरपेक्ष विषयों, यथा- ज्योतिष, आयुर्वेद आदि विषयों के अध्ययन के लिए भी तिब्बत जाना अनिवार्य हो गया। फलत : लदाख में साहित्यिक माध्यम के लिए किसी भाषा एवं लिपि के विकास का मार्ग अवरुद्ध हो गया।

हिमालयी क्षेत्र के बौद्ध समुदायों में शिक्षा एवं धार्मिक अनुष्ठानों की भाषा के स्तर पर भोटी भाषा एवं लिपि का रूप नियत था। अत : लदाख में भी भोटी भाषा के प्रचलन के साथ इसका पूरी निष्ठा से पालन किया गया। बोलचाल की भाषा के स्तर पर भी आवश्यक होने पर इन्हीं स्रोतों का दोहन किया जाता रहा। किन्तु लगभग एक हजार वर्षों तक लदाखी में अपने किसी प्रकार के स्वतन्त्र साहित्य सृजन की तथा लिप्यांकन की किसी परम्परा के विकसित न हो पाने तथा मौखिक परम्परा पर आधारित एक लोकभाषा के रूप में प्रयोग होते रहने के

कारण इसमें अन्य स्रोतों से आगत भाषिक तत्त्वों का सम्मिश्रण होता रहा, जो कि किसी भी मौखिक व्यवहार की भाषा में होता रहता है। लदाख में बोली जाने वाली भोटी भाषा पर भारत -ईरानी परिवार से सम्बद्ध दरद-शिना भाषाओं तथा अरब-फारसी परिवार के उर्दू तथा अन्य भाषाओं का प्रभाव देखा जा सकता है।

लदाख का प्रथम शासक किद -दे त्रिमा गोन तथा उसके उत्तराधिकारी पलगी गोन तिब्बती राजवंश से सम्बद्ध थे। उन्होंने बौद्ध साहित्य की उन्नति में पर्याप्त सहयोग दिया। 10वीं शताब्दी में तिब्बत के पूरङ प्रान्त में जन्मे रिनछेन .सङपो ने लदाख में बौद्धधर्म के पुनरुद्धार के साथ -साथ बौद्ध साहित्य के विकास में भी महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। उन्होंने कुछ विद्वानों के साथ मिलकर बौद्ध धर्म दर्शन से सम्बन्धित संस्कृत के कुल 179 ग्रन्थों का अनुवाद भोटी में किया। इसीलिए उन्हें लो़चावा (लोकचक्षु•अनुवादक) की उपाधि से विभूषित किया गया। उनके द्वारा अनुदित ग्रन्थ आज भी उपलब्ध हैं जबकि उनके मूल संस्कृत ग्रन्थ अब लुप्त हो चुके हैं।

साहित्य के क्षेत्र में 10वीं-11वीं शताब्दी के प्रसिद्ध विद्वानों में जङस्कर के लो़चावा फगस्पा शेरब तथा उनके बल्तिस्तानी शिष्य बल्ती लो़चावा का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा। जङस्कर लो़चावा फगस्पा शेरब ने तर्क विद्या से सम्बन्धित अनेक ग्रन्थों का संस्कृत से भोटी में अनुवाद किया। बल्तिस्तान के स्कर -दो क्षेत्र के बुलमिग नामक गाँव में एक निर्धन परिवार में जन्मे बल्ती लो़चावा जङस्कर लो़चावा के चार प्रधान शिष्यों में से एक थे।

16वीं शताब्दी में तिब्बत में जन्मे लामा स्तगछङ रसपा ङवाङ ग्याछो ने अनेक पुस्तकों की रचना की। उनका कार्यक्षेत्र लदाख रहा। उन्होंने लदाख के प्रसिद्ध हेमिस तथा चेदे (चेमडे) गोनपाओं की स्थापना की थी। उन्होंने अपनी आत्मकथा में लदाख के तत्कालीन राजनैतिक एवं धार्मिक स्थिति का विस्तार से वर्णन किया है। राजा देलेग नमग्यल के शासनकाल में सन् 1653 ई. में साबू गाँव के मिगनग परिवार में जन्मे प्रसिङ कलाकार पोन नमखा पलगोन ने पद्मसम्भव की जीवन गाथा तथा स्तगछङ रसपा ङवाङ ग्याछो के अनेक ग्रन्थों की प्रतिलिपि करने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। सन् 1663 ई. में राजा देलेग नमग्यल के अनुरोध पर लामा ङवाङ कुनगा, योनतन देलेग, फुनछोग सोनम, ग्यलछन पल .सङपो आदि विद्वानों ने स्तगछङ रसपा की जीवनी को पूरा करने में योगदान दिया।

लदाख के प्रसिद्ध विद्वान और साधक डुबछेन ङवाङ छेरिङ (1717-1794) का जन्म 1717 ई. में जङस्कर के अतिङ नामक गाँव में हुआ था। उन्होंने भी भोटी भाषा में धर्म दर्शन से सम्बन्धित ग्रन्थों की रचना की। कालान्तर में उनके पुत्र और जङस्कर के जोङखुल गोनपा के प्रसिद्ध साधक एवं विद्वान प्रधान लामा कुनगा छोसलेग ने भी अनेक ग्रन्थों की रचना की। उनके रचित अनेक ग्रन्थ जङस्कर के फे गाँव में आज भी सुरक्षित हैं। उन्होंने प्रसिद्ध हंगरी भोट भाषाविद् सोमा डि कोरो के प्रश्नों के उत्तर के रूप में एक ग्रन्थ की रचना कर डाली। लदाख की साहित्यिक गतिविधियों में लामा .शदपा दोर्जे (1770-1842) तथा लामा टशी तनफेल (1811-1875) ने अपनी रचनाओं के द्वारा महत्त्वपूर्ण योगदान दिया।

लदाख पर डोगरा शासकों द्वारा आक्रमण करने पर यहाँ की अनेक बहुमूल्य धार्मिक, सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक धरोहर को नष्ट किया गया, परन्तु डोगरा शासकों ने लदाख के विद्वानों को निरुत्साहित नहीं किया। डोगरा शासन के प्रथम चरण में महाराजा गुलाब सिंह के शासनकाल में लदाख में लामा छुलठिम ञिमा (1790-1865) नामक प्रसिद्ध विद्वान हुए। उनका जन्म ससपोल गाँव के खाचेपा नामक परिवार में हुआ था। उन्होंने लदाख के रिजोङ एवं नुबरा क्षेत्र के समतनलिङ गोनपाओं का निर्माण करवाया।

लामा छुलठिम ञिमा ने 500 पृष्ठों में एक ग्रन्थ की रचना की और तत्कालीन समाज के युवाओं को साहित्यिक गतिविधियों में भाग लेने के लिए प्रोत्साहित किया। कालान्तर में नसतन दोर्जे तथा अन्य विद्वान लामाओं ने मिलकर लामा छुलठिम ञिमा के जीवन पर आधारित एक महत्त्वपूर्ण की रचना की। इस ग्रन्थ में तत्कालीन लदाख की आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक स्थिति का महत्त्वपूर्ण ज्ञान प्राप्त होता है।

प्रसिद्ध योरोपीय विद्वान हेनरी जेस्के ने सन् 1850 ई. में पहली बार बाइबिल का स्थानीय भोटी भाषा में अनुवाद किया। सन् 1902 ई. में उक्त अनुवाद में रह गयी त्रुटियों का निवारण करके प्रकाशित किया गया। कहा जाता है कि मोरेवियन मिशन के जेस्के महोदय ने भोटी भाषा के अनेक धार्मिक ग्रन्थों एवं लेखों अनुवाद अंग्रेजी में किया था। उन्होंने भोट व्याकरण पर एक उच्च कोटि की पुस्तक की रचना की , जिसका प्रकाशन लंदन से सन् 1865 में हुआ। उन्होंने भोट व्याकरण पर 'ए शॉर्ट प्रैक्टिकल ग्रामर ऑफ टिबेटन लैंगुएज' नामक एक अन्य ग्रन्थ की रचना

की। इस ग्रन्थ का प्रकाशन 1881 में केलङ से हुआ। उन्होंने सन् 1857 से अनेक वर्षों तक लदाख तथा सीमान्त तिब्बत में भोट जनजाति के बीच रहकर अपना प्रसिद्ध 'टिबेटन-इंगलिश डिक्शनरी' के लिए सामग्री जुटाया, जो सन् 1818 ई. में प्रकाशित हुआ।

प्रसिद्ध हंगरी भोट भाषाविद् सोमा डि कोरो ने भोटी भाषा पर 'टिबेटन-इंगलिश डिक्शनरी' तथा 'टिबेटन ग्रामर' (1834), 'संस्कृत-टिबेटन-इंगलिश डिक्शनरी' (1916-1944) की रचना की। उन्हें विश्व की प्रमुख चौदह भाषों पर अधिकार था। उन्होंने तिब्बत की गोनपाओं में सात वर्षों तक गहन अध्ययन किया था। वे जङस्कर में रहकर वहाँ के बौद्ध विद्वानों, जिनमें आचार्य कुनगा छोसलेग तथा लामा सेङगे फुनछोग प्रमुख थे, से भोट भाषा तथा बौद्ध दर्शन का गहन अध्ययन किया था। सोमा डि कोरो ने कग्युर तथा तनग्युर के कुछ ग्रन्थों का अनुवाद किया। उन्हें शब्दकोश और व्याकरण लिखने की प्रेरणा प्रसिद्ध लेखक मूरक्राफ्ट से मिली। लदाख में भोटी भाषा सीखने में उन्होंने लामा सेङगे फुनछोग की सहायता ली।

उल्लेखनीय है कि जङस्कर के प्रसिद्ध विद्वान लामा सेङगे फुनछोग द्वारा रचित 'टिबेटन-इंगलिश डिक्शनरी' पुस्तक का प्रकाशन 1834 में एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल , कलकत्ता से हुआ। प्रसिद्ध पुरातत्ववेत्ता एलेक्जेंडर कनिंघम ने लदाख पर एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण एवं प्रामाणिक ग्रन्थ 'लदाक, फिजिकल, स्टेटेस्टिकल एण्ड हिस्टॉरिकल' नामक ग्रन्थ की रचना की , जिसे सर्वप्रथम लंदन से 1853 में प्रकाशित किया गया। उसके बाद यही ग्रन्थ 1970 में दिल्ली स्थित सागर पब्लिकेशन्स द्वारा पुनर्प्रकाशित किया गया। कनिंघम ने सन् 1840 तथा 1847 में दो

बार लदाख की यात्रा की थी। लदाख में रहकर उन्होंने भोटी भाषा , इतिहास, संस्कृति का गहन अध्ययन किया। यह ग्रन्थ लदाख के भौगोलिक, एतिहासिक, सामाजिक, प्रशासनिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ माना जाता है।

प्रसिद्ध पुरातत्ववेत्ता एलेक्जेंडर कनिंघम ने लदाख पर एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण एवं प्रामाणिक ग्रन्थ 'लदाक, फिजिकल, स्टेटेस्टिकल एण्ड हिस्टोरिकल' नामक ग्रन्थ की रचना की , जिसे सर्वप्रथम लंदन से १८५३ में प्रकाशित किया गया। उसके बाद यही ग्रन्थ १९७० में दिल्ली स्थित सागर पब्लिकेशन्स द्वारा पुनर्प्रकाशित किया गया। कनिंघम ने सन् १८४० तथा १८४७ में दो बार लदाख की यात्रा की थी। लदाख में रहकर उन्होंने भोटी भाषा , इतिहास, संस्कृति का गहन अध्ययन किया। यह ग्रन्थ लदाख के भौगोलिक , एतिहासिक, सामाजिक, प्रशासनिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ माना जाता है।

सन् 1890 ई. में लेह के तत्कालीन रेजिडेन्ट कैप्ट्रेन रामसे ने एक भोट-अंग्रेजी शब्दकोश की रचना की थी , जो लदाख में कार्य करने वाले ब्रिटिश अधिकारियों के लिए विशेष रूप से उपयोगी था। कैप्टेजन रामसे उन अधिकारियों में थे जो बिना किसी कठिनाई के स्थानीय लोगों से लदाखी में संवाद करने में समर्थ थे , जबकि अन्य अधिकारियों को दुभाषियों का सहारा लेना पड़ता था। सन् 1900 ई. में प्रसिद्ध विद्वान ए. एच. फ्रेंके ने लदाखी भाषा पर एक मौलिक व्याकरण की रचना की। इससे पूर्व जेस्के द्वारा रचित व्याकरण मोरेवियन मिशन कुल्लू में उपलब्ध थी , जो उन लोगों के लिए उपयोगी था , जो भोट शास्त्रीय भाषा तथा लदाख और

बल्तिस्तान में बोली जाने वाली भाषाओं के तुलनात्मक अध्ययन करने के इच्छुक थे।

फ्रेंके ने सन् 1896 ई. में लदाख की यात्रा की थी। उन्होंने लदाख में रहकर ऐतिहासिक एवं पुरातात्विक सामग्री तथा लदाख के लोकगीतों और लोक गाथाओं से सम्बन्धित प्रचुर सामग्री एकत्र की थी। उन्होंने लदाख के प्रसिद्ध लोक महाकाव्य गेलम गेसर का अंग्रेजी अनुवाद भी किया था। उन्होंने सेंट मार्क के सिद्धान्तों तथा लदाख से सम्बन्धित विभिन्न विषयों में अनेक ग्रन्थों तथा लगभग 90 लेखों की रचना की। उन्होंने सन् 1904 ई. में प्रथम लदाखी समाचार -पत्र का प्रकाशन प्रारम्भ किया। इस समाचार -पत्र की 50 से 100 प्रतियाँ प्रेस में मुद्रित होती थी जिसे अन्य क्षेत्रों के अतिरिक्त दार्जिलिङ -कालिम्पोङ में भेजा जाता था। यह लदाख या यों कहें जम्मू कश्मीर से प्रकाशित होने वाला सम्भवत : पहला समाचार-पत्र था।

सन् 1880 ई. में तत्कालीन भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण के निदेशक ने लदाख की यात्रा की थी। उन्होंने लदाख में पुरातात्विक एवं ऐतिहासिक अनुसंधान के लिए महत्त्वपूर्ण सुझाव दिये। उनके अनुसार लदाख के लोगों के मध्य प्रचलित प्राचीन पौराणिक कथाओं , लोक-कथाओं आदि का संग्रह करना आवश्यक माना गया , जिनकी जानकारी केवल वृद्ध लोगों को थी और उनकी मृत्यु के पश्चात लुप्त होने की सम्भावना थी।

ऐतिहासिक लेखों और प्राचीन परिवारों तथा प्रधानों की वंशावली का संग्रह करना ऐतिहासिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण माना गया। लदाख की गोनपाओं के पुस्तकालयों तथा किसी व्यक्तिगत संग्रहों में विद्यमान

बौद्ध साहित्यों , ग्रन्थों तथा पांडुलिपियों की सूची बनाना तथा उन पांडुलिपियों को किसी संरक्षित पुस्तकालय में सुरक्षित रखना अति आवश्यक माना गया।

रेडल्स महोदय ने अपने हस्तलेख में मुंशी पलजेस के डोगरा युद्ध का इतिहास के तृतीय अनुवाद का उल्लेख किया है। इससे पूर्व सन् 1886 ई. में इसके दो त्रुटिपूर्ण अनुवाद हो चुके थे। सन् 1898 से 1902 ई. तक हेदे महोदय ने दार्जिलिङ में विद्वानों की एक समिति की सहायता से बौद्ध साहित्य के नये विधान में सुधार तथा संशोधन का कार्य किया था।

सन् 1910 ई. में हिमाचल प्रदेश के ताबो तथा लदाख के लेह तथा बासगो में अनेक महत्त्वपूर्ण पांडुलिपियाँ खोजी गयीं। ताबो में सन् 1025 से 1050 तक की पांडुलिपियाँ प्राप्त हुई जिनमें अधिकांश प्रज्ञापारमिताशास्त्र की 12 प्रतिलिपियाँ थीं। लेह के राजमहल तथा बासगो के सेरजङ गोनपा में राजकीय पुस्तकालय का बहुत बड़ा भाग सुरक्षित रखा गया था। इसी काल में लेह में एक प्राचीन स्तूप को तल से शिखर तक प्राचीन पांडुलिपियों से भरा देखा गया।

सन् 1918 ई. में लदाख के प्रसिद्ध विद्वान सोनम छेतन उर्फ योसेफ गेरगन ने अनेक प्राचीन लेखों एवं पुस्तकों के अनुवाद का कार्य प्रारम्भ किया, जिसके लिए उन्हें शास्त्रीय भोटी भाषा को सीखना पड़ा। शीघ्र ही उन्होंने बाइबिल का प्रारूप तैयार कर फ्रेंके को सौंप दिया। गेरगन के लिए पद्यों पर काम करना कठिन था , जिसमें भोट वर्णमाला के अनुक्रम से प्रत्येक पंक्ति का अंत होता था।

योसेफ गेरगन ने मानव, आत्मा तथा नैतिक विचारों पर आधारित एक ग्रन्थ की रचना की। उसके द्वारा रचित ग्रन्थ का विषय गुरु -शिष्य संवाद, धर्म का अर्थ , पुनर्जन्म तथा तत्सम्बन्धी वार्तालाप पर आधारित था। गेरगन सन् 1926 तक भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण के लिए कार्य करते रहे तथा अपने ऐतिहासिक ग्रन्थ ल -द्वगस् ग्र्यल-रबस् छि-मेद ग्तेर के लिए उन्होंनने महत्त्वपूर्ण सामग्री का संकलन किया।

इस ग्रन्थ का प्रकाशन सन् 1971 में श्रीनगर से हुआ। हालांकि इस ग्रन्थ में घटनाओं के क्रमबद्ध वर्णन का अभाव प्रतीत होता है , फिर भी इस ग्रन्थ में लदाख से सम्बन्धित ऐतिहासिक एवं पुरातात्त्विक सामग्री का भरपूर उपयोग हुआ है। गेरगन महोदय की अन्य कृतियों में अन्त्येष्ठि-संस्कार तथा भोट लोकोक्ति-संग्रह महत्त्वपूर्ण है, जिसका बाद में वाल्टर एसबो ने अंग्रेजी में अनुवाद किया। वाल्टर एसबो ने लदाख के जीवन से सम्बन्धित लघुचित्रों की शृंखला मोरेवियन तथा विद्वानों की शैक्षिक पत्रिका में प्रकाशित की। इनके कुछ अप्रकाशित टंकित लेख मोरेवियन हाउस, लंदन में आज भी सुरक्षित हैं।

सन् 1902 ई. के आसपास लोसङ छुलठिम छोसफेल रिनपोछे (1862-1926) ने लदाख में साहित्यिक रचना में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। द्वितीय स्रस रिनपोछे के नाम से विख्यात छुलठिम छोसफेल बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। वे गद्य , पद्य, स्तुति-गान, गीत आदि विधाओं में निपुण थे। कहा जाता है कि वे महान् विद्वान होने के साथ -साथ महान् कलाकार, शिल्पकार और गायक भी थे। इनकी रचनाएँ सन् 1934 में प्रकाश में आई। आज भी इनके द्वारा रचित गीत लदाख में लोकप्रिय हैं। इनके समकालीन स्तोग निवासी काछेन येशे दोनडुब (1890-1980) लदाख

के प्रसिद्ध विद्वान हुए। उन्होंने भोट भाषा में अनेक ग्रन्थों की रचना की। वे भोट व्याकरण के विद्वान माने जाते थे।

सन् 1933 ई. में बौद्ध धर्म के प्रकाण्ड विद्वान और हिन्दी प्रेमी लेखक पण्डित राहुल सांकृत्यायन का लदाख आगमन हुआ। अपने लदाख प्रवास के दौरान उनका सम्पर्क लदाख के दो विद्वानों , योसेफ गेरगन तथा मुंशी छेतन फुनछोग से हुआ। लदाख प्रवास में उन्होंने लदाखी सीखने के लिए लदाखी रीडर नाम से एक ग्रन्थ की रचना की। उन्होंने तीन बार तिब्बत की यात्रा की थी और वहाँ भोटी भाषा का गहन अध्ययन किया था। सन् 1935-40 में लदाख के युवाओं ने लदाखी भाषा , साहित्य एवं संस्कृति के विकास एवं संवर्द्धन के लिए यंग मेन बुद्धिस्ट एसोसिएशन नामक संस्था का गठन किया , जो बाद में लदाख बुद्धिस्ट एसोसिएशन के नाम से प्रसिद्ध हुआ। सन् 1942 ई. में इसी संस्था के तत्वावधान में मुंशी छेतन फुनछोग ने लदाख के स्कूलों में प्रथम से पाँचवीं कक्षा तक के बच्चों के लिए पाठ्य -पुस्तकें तैयार की। कालान्तर में ये पुस्तकें लदाख में अत्यन्त लोकप्रिय हुई और स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद तक स्कूलों में पाठ्य -क्रम के अन्तर्गत इन पुस्तकों का पठन -पाठन जारी रहा।

19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में लदाख में भोटी भाषा को एक साहित्यिक भाषा के रूप में विकसित किये जाने में जमयङ ग्यल़छन का उल्लेखनीय योगदान रहा है। उन्होंने 1960 के दशक में 'नोरबू-ग्र्यन' नाम से एक लदाखी व्याकरण की रचना की। भोटी भाषा के भाषा वैज्ञानिक विश्लेषण के क्षेत्र में संयुक्ता कौशल ने सन् 1979 में 'लदाखी ग्रामर' नामक ग्रन्थ की रचना की। सन् 1996 से 2004 के बीच प्रसिद्ध

भाषाविज्ञानी डी.डी. शर्मा ने लदाख उप -खण्ड की विभिन्न घाटियों की बोलियों और भाषाओं पर किये गये सर्वेक्षण पर आधारित तीन खण्डों अंग्रेजी भाषा में 'ट्राइबल लैंग्वेजेज ऑफ लदाख' नामक ग्रन्थों की रचना की।

भोटी भाषा के विकास में स्थानीय लेखकों का योगदान

प्रारम्भ में लदाख में लदाखी विद्वानों द्वारा अधिकांशत : धार्मिक विषयों पर ग्रन्थों की रचना की जाती थी। इनमें विशेष रूप से बौद्ध ग्रन्थों के अनुवाद एवं दार्शनिक ग्रन्थों की टीकाएँ सम्मिलित हैं। इन लेखकों एवं अनुवादकों में जङस्कर लो़चावा फगस्पा शेरब (1060-?), बल्ती लो़चावा (11वीं शताब्दी), साछेन कुनगा त्रिङपो (1092-1158), फगमो डुब (1120-1170), छङपा ग्यारे (1161-1211), लो़चावा ़शोनू छुलठिम (12वीं शताब्दी), पी रङ रसछेन (1337-1417), सङफुबा ल्हवङ ल्होडोस (1385-1438), लामा टुङपा दोर्जे पल़सङ (15वीं शताब्दी), ल्हर्चेबा ल्हवङ ़सङपो (1546-1615), मिला रिनपोछे लो़सङ टशी (17वीं शताब्दी), डुबछेन देबा ग्याछो (17वीं शताब्दी), काछेन लो़सङ ़चोनडुस (17वीं शताब्दी), डुबवङ ङवाङ छेरिङ (1717-1794), लामा छुलठिम त्रिमा (1795-1872), कुनगा छोसलेग (18वीं शताब्दी), डुबवङ कोनछोग वङपो (1804-1881), लामा टशी तनफेल (1811-1875), काछेन येशे दोनडुब (1898-1980), सोनम छेतन योसेफ गेरगन (19वीं शताब्दी), गेरगन कोनछोग सोनम (1911-1987), ठिपोन पद्मा छोसग्यल (20वीं शताब्दी), खनपो कोनछोग तोगडोल (1920-2006), काछेन लो़सङ ़जोदपा आदि प्रमुख हैं।

गेरगन कोनछोग सोनम ने लदाख के इतिहास एवं गोनपाओं पर तीन खण्डों में 'ल-द्वगस् गोनपई नमस्क्यी लो ग्र्युस ' नामक ग्रन्थ की रचना की। आधुनिक लदाखी लेखकों में सर्वश्री टशी रबग्यस ने लदाख के इतिहास पर एक प्रामाणिक ग्रन्थ 'मरयुल लद्वगस्–क्यी डोनरब कुऩसल मेलोङ' की रचना की। उन्होंने लदाखी भाषा , लोकगीत एवं लदाख के विशिष्ट लामाओं, आचार्यों एवं अन्यान्य विषयों पर अनेक कृतियों की रचना की है। लदाखी भाषा पर जमयङ ग्यलछन ने नोरबू ग्र्यन नामक प्रसिद्ध व्याकरण की रचना की, जिसे जम्मू कश्मीर सरकार की ओर से विद्यालयी पाठ्य-क्रम में रखा गया है। गेलोङ साफुद थुबतन पलदन ने लदाख के इतिहास , भाषा, धर्म, बौद्धमठों, लदाख के विशिष्टजनों की जीवनी आदि पर अनेक ग्रन्थों की रचना की है।

अन्य लेखकों में गेलोङ कोनछोग फन्दे , गेलोङ छेवाङ रिगजिन, ङवाङ छेरिङ, ङवाङ छेरिङ सगस्पो , छिमेद नमग्यल, श्रद्धेय कोनछोग रङडोल त्रिमा, श्रद्धेय स्तगना रिनपोछे तोनयोद दोर्जे , श्रद्धेय तोगदन रिनपोछे स्तनपई ग्यलछन , श्रद्धेय स्रस रिनपोछे , सोनम फुनछोग अचिनाथङ, गेलोङ कोनछोग नमग्यल, छेरिङ सोनम, स्तनजिन दोर्जे आदि के नाम उल्लेखनीय हैं , जिन्होंने समय-समय पर लदाख के विभिन्न विषयों पर ग्रन्थों एवं लेखों की रचना भोटी भाषा में की है।

।। भवतु सब्ब मङ्गलं ।।

ooo

कश्मीर का गौरव ग्रंथ : राजतरंगिणी

-गौरीशंकर वैश्य विनम्र

कहा जाता है कि धरती पर कहीं स्वर्ग है तो कश्मीर की भूमि पर है। गगनचुंबी हिमशिखरों , हरे - भरे चारागाहों , विस्तृत वन प्रदेशों में झर - झर झरते झरने , झिलमिलाती झीलों, उमगती - इठलाती सरिताओं, महकते फूलों से भरे उद्यानों , केसर के सुगंधित खेतों , सेब से लदे सुंदर बगीचों और धान की लहलहाती फसल से भरा यह प्रदेश , सचमुच मोतियों की माला में मरकत मणि के समान सुशोभित है।यह तथ्य भी कम लोगों को ज्ञात होगा कि हमारे नामों के पूर्व 'श्री' लगाने की परंपरा वस्तुतः कश्मीर और श्रीनगर की ही देन है।

कश्मीर की भूमि भारतीय संस्कृति की क्रीड़ास्थली रही है। पूरे विश्व में फैली भारतीय जीवन पद्धति के प्रचार - प्रसार में कश्मीर का विशेष योगदान है। किंवदंती है कि देवताओं और दैत्यों के पिता कश्यप ऋषि ने यहाँ तप किया था , उन्हीं के नाम पर यह 'कश्यप मेरू' कहलाया जो 'काश्यपी' के अपभ्रंश के रूप में 'कश्मीर' कहा जाने लगा।

संस्कृत के महाकवि कालिदास का नाम देश में अपार श्रद्धा से लिया जाता है, उनका नाम भी इस प्रदेश से जुड़ा हुआ है। साथ ही 12 वीं शती के विलक्षण काव्य प्रतिभा के धनी पंडित कल्हण ने कश्मीर के

गौरव ग्रंथ के रूप में 'राजतरंगिणी' नामक कालजयी रचना का जो अनमोल उपहार दिया, वह वर्णनातीत है। राजतरंगिणी का शाब्दिक अर्थ है - राजाओं का इतिहास या समय प्रवाह।

संस्कृत के महान कवि पंडित कल्हण कश्मीर के महाराजा हर्षदेव के महामात्य चंपक के पुत्र थे। वे सुसंस्कृत शिक्षित कश्मीरी माहेश्वर ब्राह्मण थे। उनका वास्तविक नाम 'कल्याण' था, किंतु स्थानीय बोलचाल में उन्हें 'कल्हण 'नाम से जाना गया। महान रचनाकार मंखक ने अपनी पुस्तक 'श्रीकंठ चरित' में कल्हण नाम के कवि को सराहा है तथा उन्हें 'बहुकथाकेलि' परिश्रम निरंकुश कवि घोषित किया है। कल्हण ने बारहवीं शताब्दी में (1148 ई ०से 1150 ई ०के मध्य) राजतरंगिणी नामक विलक्षण महाकाव्य की रचना की।

उन्होंने इस ग्रंथ की रचना में ग्यारह अन्य ग्रंथों का सहयोग लिया है, जिसमें अब केवल नीलमुनि कृत 'नीलमत पुराण' ही उपलब्ध है। अन्य तीन इतिहास ग्रथों में सुवृतकृत 'कश्मीर का इतिहास',क्षेमेन्द्र रचित 'नृपावली' तथा हेलाराज द्वारा प्रणीत 'पार्थिवावली' के नामों का उल्लेख मिलता है।

कवि कल्हण के समक्ष उस समय राजनीतिक उथल-पुथल का समय था। रचना के आरंभिक भाग में यद्यपि पुराणों के ढंग का वर्णन अधिक मिलता है परंतु बाद की अवधि का विवरण पूर्णतया ईमानदारी से दिया गया है। प्रसंगानुसार उन्होंने रामायण और महाभारत के प्रसंगों से भी सहायता ली है।

ग्रंथ के आरंभ में ही उन्होंने रचना में 'ईमानदारी' का होना आवश्यक गुण माना है -

श्लाध्यः स एव गुणवान, रागद्वेषबहिष्कृता,
भूतार्थकथने यस्य स्थेयस्येन सरस्वती।

अर्थात वही श्रेष्ठ कवि प्रशंसा का अधिकारी है , जिसके शब्द एक न्यायाधीश के निष्पक्ष निर्णय भाँति , अतीत का चित्रण करने में घृणा अथवा प्रेम की भावना से मुक्त होते हैं।

कल्हण अत्यंत चतुर कलाकार थे। वे मानव स्वभाव के अद्भुत पारखी होने के साथ-साथ, देश की नैतिक, भौतिक. सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियों से भलीभांति परिचित थे। उन्हें राजनीतिक विषयों की भी अच्छी सूझबूझ थी, क्योंकि उनके पिता कश्मीर के राजा हर्षदेव के दरबार में मंत्री थे। कल्हण स्वाभिमानी काव्यशिल्पी थे।

अतः अपने ऐतिहासिक महाकाव्य में किसी राजा से सम्मान - पुरस्कार प्राप्त करने के निमित्त उसकी चाटुकारिता के गीत नहीं गाये , अपितु तत्कालीन ऐतिहासिक सत्य तथ्य विश्व के सम्मुख प्रस्तुत करने के लिए काव्य साधना किया।

राजतरंगिणी में कुल आठ तरंग (सोपान) , लगभग 8000(कुल 7826) श्लोकों में हैं। विद्वान ब्राह्मण होने के कारण उन्हें संस्कृत भाषा का अच्छा ज्ञान था। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि यह बात कम लोगों

को ज्ञात होगी कि ग्यारहवीं शती में जब कल्हण ने अपनी अमरकृति राजतरंगिणी की रचना की तो वह शारदा लिपि में थी।

इसका मूल संस्कृत था। यह कुछ ऐसी है, जैसे कश्मीरी को रोमन लिपि में लिखा जाए। कवि ने अपने ग्रंथ में अन्य योग्य तपस्वी तथा ज्ञानमर्मज्ञ ब्राह्मणों का भी गुणगान किया है , जिनके सानिध्य में उन्हें उत्कृष्ट ज्ञान प्राप्ति में योगदान मिला था।

राजतरंगिणी के पहले तीन तरंगों में कश्मीर के प्राचीन इतिहास की जानकारी, चौथे से लेकर छठवें तरंग में कार्कोट एवं उत्थल वंश का इतिहास वर्णित है। सातवें - आठवें तरंग में लोहारवंश का इतिहास उल्लिखित है।

कल्हण ने तत्कालीन इतिहास का सजीव चित्र प्रस्तुत किया है जो अत्यंत दुःखद एवं निराशाजनक है। उसकी एक झलक प्रस्तुत है -

कश्मीर के इतिहास की उत्कलवंशी सबसे सशक्त महिला , शासक दिद्दा थी। वह 950-958 ई० में राजा क्षेमेन्द्र गुप्त की पत्नी थी। उसने शारीरिक रूप से अक्षम पति के कारण शासन सत्ता का पूरी तरह उपयोग किया। वह पति की मृत्यु के बाद 980 ई० में सिंहासन पर बैठी और उसने साफ - सुथरा शासन देने का प्रयास किया। उसने भ्रष्ट मंत्रियों, यहाँ तक कि अपने प्रधानमंत्री तक को भी बर्खास्त कर दिया , परंतु सत्ता और वासना की भूख ऐसी थी कि अपने ही पुत्रों को मरवा दिया।

वह पुंछ के एक ग्वाले तुंगा से प्रेम करती थी , जिसको प्रधानमंत्री बना दिया। उस समय का इतिहास का ऐसा सत्यतापूर्ण वर्णन कल्हण के अतिरिक्त किसी अन्य संस्कृत विद्वान कवि ने नहीं किया। जयसिंह लोहार वंश का अंतिम शासक था , जिसने 1128 ई० से 1155 ई० तक शासन किया। जयसिंह के शासन के साथ ही कल्हण की राजतरंगिणी का विवरण समाप्त हो जाता है।

कल्हण की इस पुस्तिका के तीन प्रमुख उद्देश्य हैं - पुराने राजवंशों की जानकारी देना , पाठकों का मनोरंजन करना और अतीत से शिक्षा लेना।

कुल 120 छंदों में लिखि 'राजतरंगिणी' में महाभारत काल से लेकर कल्हण के काल तक का इतिहास है , लेकिन मुख्य रूप से राजा अनंतदेव के पुत्र राजा कैलाश के कुशासन का वर्णन है। वे बताते हैं कि कश्मीर काफी पहले एक विशाल झील थी , जिसे कश्यप ऋषि ने बारामूला की पहाड़ियाँ काटकर खाली किया। श्रीनगर शहर सम्राट अशोक ने बसाया था और यहीं से बौद्ध धर्म पहले कश्मीर में और बाद में मध्य एशिया , तिब्बत और चीन पहुँच गया। उन्होंने बौद्ध धर्म की उदात्त परंपराओं को सराहा है। पाखण्डी (शैव) तांत्रिकों को आड़े हाथों लिया है। सच्चे देशभक्त की भाँति कवि ने अपने देशवासियों की आँखों से बुराइयों का पर्दा हटाया है। उन्होंने सहृदय कवि के सदृश देशकाल की सीमाओं से ऊपर उठकर 'सत्य शिव सुंदर' भाव का अभिनंदन एवं प्रतिपादन किया है।

कल्हण ने राजा हर्षदेव के उत्थान और पतन का जो विशद वर्णन किया है , वह भारतीय इतिहास का महत्वपूर्ण अध्याय है।

किशोरावस्था में हर्ष बड़ा गुणानुरागी, कई भाषाओं का ज्ञाता, सदाचारी तथा काव्यात्मक प्रवृत्ति का था। उसका लोभी पिता कलश विद्वानों से द्वेष रखता था परंतु हर्ष भूखा रहकर अपने व्यय से पंडितों और कवियों की सहायता करता था।

कर्नाटक राज्य के विद्यापति उपाधि पाने वाले कवि विल्हण भी हर्ष के काव्य और कला के प्रति अनुराग की कथा सुनकर स्पृहा करता था। पर इसी हर्ष को चाटुकारों ने घेर लिया। उसका अंतःपुर सुंदरियों से भर गया। वह विलासी बन गया और अविवेकी अमात्यों के परामर्श पर जनता को लूटने लगा। उसने योग्य तथा विश्वसनीय मंत्री को ही बंदी बनाने का प्रयास किया , अपने ही भतीजों की हत्या करवायी , देवालयों से स्वर्ण - रत्न भी लूटे।

अंत में बड़ी कारुणिक और विडंबना दशा में हर्ष की जीवन लीला समाप्त हुई। कल्हण का देव की प्रतिमा पर अटूट विश्वास था। कवि की दृष्टि से हर्षदेव जैसे गुणज्ञ राजा का दुःखद पतन दैव की प्रतिकूलता का परिणाम था। शुभाशुभ, शकुनों तथा उत्पातों के विषय में भी उनकी यही अविचल धारणा थी।

कल्हण की प्रतिभा 'राजतरंगिणी' में उत्कृष्ट काव्य सौष्ठव , महाकाव्यत्मकता के साथ प्रकट हुई है। वे उत्कृष्ट कवि और साहित्यकार दोनों हैं।

राजतरंगिणी भावभूमि, भाषा, छंद, रस तथा अलंकार की दृष्टि से भी अनूठी कृति है। अपनी जन्मभूमि को स्वर्ग से भी अधिक सुंदर निरूपित करते हुए वे कहते हैं -

विद्यावेश्मानि तुंगानि कुंकुमं साहिमं पयः,
द्राक्षेति यत्र सामान्यमस्ति त्रिदिवदुर्लभं।

अर्थात ऊँचे - ऊँचे विद्याभवन, केसर, शीतल जल और द्राक्षा, ये सब स्वर्ग से भी दुर्लभ वस्तुएँ जिस कश्मीर में सामान्यतया प्राप्त हैं , उसकी तुलना भला और किससे की जा सकती है।

उनके अनुसार जिनकी भुजाओं की छत्रछाया में समुद्र सहित यह धरती सुरक्षित रहती है , बड़े - बड़े बलशाली राजागण जिसकी कृपा के बिना स्मरण भी नहीं किए जाते , यह प्रकृति का सर्वोत्कृष्ट कवि कर्म ही नमस्कार के योग्य है।

भुजवनतरुच्छाया येषां निषेव्य महौजसां
जलधिरशनामेदिन्यासीदसावकुतोभया।
स्मृतिमपति न ते यान्ति क्षमापा विना यदनुग्रहं
प्रकृतिमहते कुर्मस्तस्मै नमः कवि कर्मणे।

कृति इतिहास प्रधान होते हुए भी काव्यात्मक सौंदर्य से परिपूर्ण है। लक्षण ग्रंथों की प्रचलित परिभाषा के अनुसार कृति में 'महाकाव्यत्व' भले ही अनुपस्थित माना जाए, किंतु है वह
चित्ताकर्षक काव्य ही। महाकवि कल्हण सुकवि के गुणों की कल्पना करते हुए उसे अमर कर देने वाला रसायन स्वीकार करते हैं।

राजतरंगिणी का प्रमुख रस 'शांत' है। कल्हण एक दार्शनिक की भाँति संसार की क्षणभंगुरता पर विचार करते हुए काव्यशास्त्रीय दृढ़ता से शांत रस की सर्वोत्कृष्टता सिद्ध करते हैं -

क्षणभंगिनि जन्तूनां स्फुरिते परिचिंतते,
मूर्धाभिषेकःशास्त्रस्य रसस्यात्र विचार्यताम।

कवि ने रचना में वैदर्भी रीति तथाअनुष्टुप छंद का ही आश्रय लिया है। कहीं-कहीं पांचाली और गौड़ी रीति, वसंततिलका, शार्दूल, विक्रीडित, चंदवर्त्म, हरिणी आदि बड़े छंद भी हैं।

अलंकारों का प्रयोग सहज और अकृत्रिम रूप से हुआ है। रूपक , उपमा, उत्प्रेक्षा, दीपक, अतिशयोक्ति, दृष्टांत आदि अर्थालंकार तथा अनुप्रास आदि शब्दालंकार प्रयुक्त हुए हैं। उत्प्रेक्षा का एक उदाहरण देखिए -

असंतापार्हताम जानन यत्र पित्रा विनिर्मिते,
गौरवादिव तिग्मांशुर्धते ग्रीष्मेप्यतीव्रता।

अर्थात पिता कश्यप जी द्वारा स्थापित किए गए कश्मीर मंडल को ताप देना उचित नहीं है , मानों यह सोचकर वहाँ ग्रीष्म में भी सूर्य अपनी किरणों में तीखापन नहीं लाते।

कवि ने स्थान - स्थान पर सूक्तिवत पद्य पंक्तियाँ विखेर दी हैं , जिनमें कवि के संघर्षमय , प्रौढ़ जीवन का अनुभव आभा बनकर झांकता प्रतीत होता है। उन्होंने तत्कालीन सामाजिक परिस्थितियों से उद्धृत अनेक मार्मिक चित्र उपस्थित किए हैं, जिसमें अनुभूति और संवेदना की

निश्छल अभिव्यक्ति हुई है। कृति की प्रबंध रचना में इतिहास को सच - सच बताया गया है।

वस्तुतः राजतरंगिणी महाकवि कल्हण द्वारा रचित कश्मीर की ऐतिहासिक गौरव गाथा के रूप में चिरस्मरणीय एवं अभिनंदनीय कृति है। समूचे भारतीय इतिहास में जो एक मात्र मनोवैज्ञानिक इतिहास प्रस्तुत करने का काव्यमय प्रयास हुआ है. वह है कल्हण की 'राजतरंगिणी '।

19 वीं शताब्दी में औरेल स्टीन ने पंडित गोविंद कौल के सहयोग से राजतरंगिणी का अनुवाद कराया था। विद्वान ए ०एल वैशम के अनुसार - " कल्हण की राजतरंगिणी तथ्यों से कम , नैतिकता से अधिक संबंधित है। वस्तुतः राजतरंगिणी भारतीय इतिहास का प्रस्थान विंदु है "।

अंत में, राजतरंगिणी की समाप्ति पर कल्हण ने उपसंहार रूप में अष्टम खंड में केवल एक छंद लिखा है, यह उद्धरणीय है -

गोदावरी सरिदेवोत्तुमुलैस्तरंगे,
र्वक्त्रः स्फुटं सपदि सप्तभिरापतन्ती।
श्रीकांतिराज विपुलामि जनाब्धिमध्यं,
विश्रान्तग्रे विशति राजतरंगिणीयं।

अर्थात जैसे गोदावरी नदी अपनी तुमुल तरंगों वाली सात धाराओं से बहती हुई विश्राम के लिए समुद्र में प्रवेश करती है, वैसे ही यह राजाओं की नदी रूपी कथा राजतरंगिणी अपने पूर्व की सात तरंगों के साथ श्री और कांति से युक्त राजाओं के विस्तृत कुल रूपी समुद्र में अथवा

कांतिराज के कुल में विश्रांति हेतु प्रवेश कर रही है। कवि का भाव यह है कि उसकी राजतरंगिणी कश्मीर के राजकुल को समर्पित है।

ooo

चाबुक सी बजती घड़ी के सामने : एक मूलत: कवि

-कमल जीत चौधरी

जम्मू - कश्मीर में हिन्दी कवियों की संख्या उँगलियों पर गिनी जा सकती है। इनमें ज़्यादातर कवि कम लिखते हैं। उससे कम छपते हैं। उससे भी कम चर्चा में रहते हैं। शेख मोहम्मद कल्याण इसी ज़्यादातर की कोटि में आते हैं। इनका पहला कविता संग्रह 'समय के धागे' 2003 में प्रकाशित हुआ था। राज्य से बाहर इसकी कोई विशेष चर्चा नहीं हुई थी।

हिन्दी कविता में लोक पर बात करते हुए वरिष्ठ कवि विजेंद्र ने ज़रूर एकाध जगह कल्याण का नाम गिनाया। जबकि इतना ही पर्याप्त नहीं था। इस संग्रह का संज्ञान सलीके से लेना चाहिए था। यह आज भी महत्वपूर्ण कविता संग्रह है। यह हिन्दी कविता की लोक परम्परा में कुछ जोड़ता है। इधर लोक को नए सिरे से मूल्यांकित करने का दावा हो रहा है। ऐसा दावा करने वालों को कल्याण का लिखा ज़रूर पढ़ना चाहिए। कल्याण हिन्दीतर प्रदेशों और हाशिए पर रहकर हाशिए पर लिखने वाले कवियों में एक ज़रूरी कवि हैं। मैं कल्याण के पहले संग्रह को एक संधि स्थल मानता हूँ। इसे बीच में रखकर जम्मू-कश्मीर राज्य में लिखी जा रही पूर्ववर्ती और परवर्ती कविता का मूल्यांकन किया जाना चाहिए।

2005 के बाद राज्य में विस्थापन के इतर कुछ अन्य काव्य प्रवृत्तियाँ सामने आईं। इनमें जनपक्ष वैचारिकता , जनतांत्रिक मूल्य, हाशिए

का स्वर, सीमावर्ती क्षेत्रों की पीड़ा, जम्मू और कश्मीर संभाग पर विभिन्न दृष्टिकोण, लोक या स्थानिकता, स्त्री संवेदना और सरोकार, दोस्ती और प्रेम में सामाजिकता, हिन्दी भाषा और शिक्षा व्यवस्था, डर और प्रतिरोध, ग़रीबी और भूख, सामूहिक सपने, आदिवासी सरोकार, सैनिक और किसान की संवेदानाएं आदि प्रमुख हैं। इनमें से कुछ काव्य-प्रवृत्तियों के बीज कल्याण के पहले संग्रह में देखे जा सकते हैं और वे अभी तक मूल कवि होने की उपलब्धि को बचाए हुए हैं।

अब इनका नया कविता संग्रह 'पहाड़ अपनी जगह छोड़ रहा है' सामने है।

इस किताब में कुल 55 कवितायें हैं। इन पर लिखते हुए इनके पहला संग्रह सामने है, उसे साथ रखकर, कुल छह बिन्दुओं के आधार पर इनकी अब तक की कविताई पर अपनी बात रखूँगा। यह बिन्दु इस प्रकार हैं -

1- स्थानिकता

2- स्मृतियों के बहाने

3- प्रेम में समाजिकता

4- बेटी का पिता और पिता का बेटा

5- समय, डर, चीख और प्रतिरोध

6- भाषा, बिंब और शीर्षक

1- स्थानिकता -

स्थानिकता का अर्थ केवल मात्र भौगोलिक परिवेश नहीं है। इसमें स्थान विशेष में रहने वाले लोगों की समस्याएँ, उनका संघर्ष, उनका यथार्थ और बोली वाणी भी आती है। स्थानिकता कवि की पहचान होती है। यह कवि की ज़मीन है। बड़ी कविता की स्थानिकता ग्लोबल होती है। कल्याण

की कविताओं में जम्मू का पहाड़ी लोक, शहरी निम्न वर्ग, मध्यवर्ग, उसका संघर्ष, उसकी जिजीविषा, उसका यथार्थ, उसकी बोली वाणी और पानी अभिव्यक्त हुआ है।

बूढ़ा आदमी, पहाड़ का आदमी, पहाड़ की बेटी, साँवली पहाड़ी लड़की शीर्षक कविताओं में पहाड़ी लोक की छटा दिखाई देती है। लड़की- 1 और लड़की- 2 कविताओं में हँसती खेलती पहाड़ी लड़की को एक दुर्घटना बना देने का संकेत मिलता है। कल्याण की ज़्यादातर कवितायें पहाड़ी लोक के छोटे- छोटे दृश्य हैं। परिदृश्य नहीं। जीवन और कविता दोनों में कवि का एक पाँव; अपने छोटे शहर और दूसरा पाँव अपने गाँव में रहता है। दोनों जगहें कवि की संवेदना पाती हैं।

पहाड़ी लोक को वे प्रकृति दोहन , बाज़ार की घुसपैठ , वहाँ की लड़कियों के सपनों, बकरवालों और गाँव के बुजुर्गों के बहाने अभिव्यक्त करते हैं। कुछ कविताओं में कल्याण का लोक हिन्दी कविता के लोक से अधिक निर्दोष लगता है। यहाँ लोक नायिका के सपनों में कोई राजकुमार नहीं आता। वह कंटीली झाड़ियों में नहीं फँसती। उसकी अपनी दुनिया है। वह लोक गीत गाती है। राहगीरों को पानी पिलाती है। वह प्रकृति से प्रेम करती है।

“खेलती है गाय के बछड़े से
बतियाती है
बिस्तर पर अठखेलियाँ करती बिल्ली से
गाती है पहाड़ी गीत”

(पृष्ठ 29, पहाड़ अपनी जगह छोड़ रहा है)

एक तरफ कवि ऐसे अछूते संसार को छूता है तो दूसरी तरफ बाज़ारवाद और बहुराष्ट्रीय कंपनियों के बढ़ते कदमों की तसदीक भी करता है। यह संग्रह साफ ध्वनित करता है कि पहाड़ थरथरा रहे हैं।

'मुक़द्दमा जारी है' कविता झंडों की राजनीति में आम आदमी की व्यथा दर्शाती है। इसमें जम्मू- कश्मीर की सियासत का सच है। यह कविता एक बौद्धिक छटपटाहट से उपजी है। यह जितनी स्थानीय है उतनी ही ग्लोबल भी है। खेल- 1 और खेल- 2 कवितायें भी संकेतों में घिनौनी राजनीति की धूर्तता दर्शाती हैं।

स्कूटर चलाती बेटी, पहली तारीख और बेटी जैसी कवितायें शहरी मध्यवर्ग का ग्लोबल चित्रण करती है। पहली तारीख और बेटी कविता रिश्तों में आर्थिक पड़ताल करती है। जबकि स्कूटर चलाती बेटी पितृसत्ता को चुनौती देती है। स्कूटर चलाती बेटी अपने आप में एक अद्भुत बिम्ब है। यह बेटियों के सपनों को बल देती कविता है। यहाँ स्कूटर की गति एक हथियार है। वह सतवारी या डोगरा चौक लाँघते हुए नए गवाक्ष खोलती है-

“उसे मालूम है
कैसे लाँघने हैं मर्यादाओं के चौक
समय की रफ्तार को भी
लांघ सकती है
स्कूटर चलाती बेटी ...”

(पृष्ठ- 20, पहाड़ अपनी जगह छोड़ रहा है)

इनकी कविताओं में लोक की बेटियाँ हैं तो शहरी स्लमस के मार्मिक चित्रण भी हैं। जम्मू-कश्मीर में 'बंद' एक पीड़ाजनित बहुअर्थी शब्द है। कल्याण का लेखन और सांस्कृतिक कर्म उस दौर में शुरू हुआ जब राज्य में आतंकवाद शुरू हुआ। यहाँ बंद आम बात थी। किसी आपातकाल में घर के अन्दर भरपूर राशन जमा कर लेने और सोश्ल नेटवर्किंग पर नयी नयी रेसिपी साझा करने वाले वर्ग को क्या पता कि किसी भी प्रकार का बंद ग़रीब रामदीनों के लिए कितना पीड़ादायक होता है।

"वे गुब्बारे रामदीन
नहीं बेच पाया
भरे थे
जो उसने उस फूँक से जिसने
सामने दिखती उसकी पसलियों में
रबर सा खिंचाव ला दिया था।"

(पृष्ठ-17, समय के धागे)

वरिष्ठ कवि आलोचक विजय कुमार लिखते हैं- 'शेख मोहम्मद कल्याण का यह संवेदना संसार बहुत चाक्षुष है। परिवेश अपनी तमाम विविधताओं के साथ इन कविताओं में उपस्थित है।' इससे एकदम सहमत हुआ जा सकता है।

2- स्मृतियों के बहाने-

किसी ने लिखा है- 'स्मृतियाँ हमें गिरने नहीं देती।' मेरा मानना है कि स्मृतियाँ सामूहिक सपनों की साथी हैं। यह ऐसा अतीत हैं जो हमेशा वर्तमान में रहती हैं। यह यथार्थ को अभिव्यक्त करती हैं। कल्याण के

लिए प्रेम की स्मृतियाँ आनन्द या तुष्टि का साधन नहीं हैं बल्कि सपनों को अभिव्यक्त करने का माध्यम हैं। वे इससे समय की पड़ताल करते हुए सत्ता से लड़ने की बात करते हैं।

स्मृतियाँ जितनी सघन होंगी , समय की पड़ताल उतनी साफ होगी। कल्याण स्मृतियों के बहाने पाठक के सामने दो समय रख देते हैं। पाठक अपने उलझे समय में कविता पढ़ते हुए कवि के सुन्दर सपने को पढ़ता है।

"यहाँ खिले थे तमाम फूल
बहार टूट टूट कर आई थी
हमने सहेजा था
मासूम क्षणों को
जितना सहेज सकते थे"

(पृष्ठ – 47, पहाड़ अपनी जगह छोड़ रहा है)

क्या कभी ऐसा भी समय था। क्या कभी ऐसा भी समय होगा। इसका उत्तर और चुनौती पाठक को मिलती है, जब कवि लिखता है-

"माना कि राजा के आदमी
खींच लेंगे तुम्हारी ज़ुबान कभी भी
बह रही
यह मनमोहक हवा भी
तुम्हारी चुगली कर देगी राजा के दरबार में
लेकिन तुम सपने देखना मत छोड़ना"

(पृष्ठ- 76, पहाड़ अपनी जगह छोड़ रहा है)

3- प्रेम में सामाजिकता-

प्रेम कभी व्यक्तिगत नहीं होता। यह कमाधिक समाज को प्रभावित करता है। इसके बिना कोई क्रांति सम्भव नहीं। कल्याण की प्रेम कवितायें भी व्यष्टि से समष्टि की ओर ले जाती हैं। कल्याण 'आह से उपजा होगा गान' की तान पर कह उठते हैं-

"यह कैसा मौसम है/
और ऐसे में/ तुम कहाँ हो/ प्रिय"

(पृष्ठ-75, पहाड़ अपनी जगह छोड़ रहे हैं)

'तुम्हारे ही बहाने से ' और 'हमें जीवन महकाना है ' जैसी कवितायें प्रेम के बहाने सामाजिक चिंताएँ दर्शाती हैं। यहाँ प्रेम की गहराई और कलात्मक परिपक्वता नहीं मिलती। यह औसत होते हुए भी जीवन के हक़ में खड़ी ज़रूरी कवितायें हैं।

प्रेम में कहीं कहीं विरह और अधूरापन है। यह कवि को पूरा करता है। एक सुन्दर उदाहरण देखें-

"तमाम अधूरी इच्छाएं
अधपकी ईंटों सी
इंतज़ार करती रहती हैं
और समय कि भट्टी पर ताकते रहते हैं
जलते हुए हम
एक दूजे को"

(पृष्ठ-92, पहाड़ अपनी जगह छोड़ रहे हैं)

यह ताकना और जलना कितना सात्विक और सामाजिक है। इसका स्वागत हरेक को करना चाहिए।

इनकी प्रेम कवितायें पढ़कर सहज ही कहा जा सकता है कि कवि प्रेम में बहुत सहज है। उसके लिए प्रेमपात्र सामूहिक सपनों का साथी है। वे प्यार करते हुए हौले से बता देते हैं कि सत्ता ने समय को जटिल बना दिया है। इसके खिलाफ मुखर होना होगा।

4- बेटी का पिता और पिता का बेटा-

कविता के इतिहास में बेटी का पिता और पिता का बेटा होकर कवियों ने काफी मार्मिक और ज़रूरी कवितायें लिखी हैं। बेटी का पिता होकर कवि गर्वित रहा है जबकि पिता का बेटा होकर वह उसका प्रतिरोधी भी रहा है। आलोच्य कविता संग्रह में संकलित बेटी शृंखला की तीन कवितायें इनके पहले संग्रह में भी हैं। इनमें पिता का प्यार , समर्पण और जीवन संघर्ष बिंबित है। यहाँ कम आय में ज्यादा जिम्मेदारियाँ निभाता पिता है। यह कवितायें निम्न मध्यवर्ग का चरित्रांकन करती हैं। एक आम वेतनभोगी छोटे कर्मी का संघर्ष और सच बताती हैं। बेटी- 3 कविता देखें-

“अपने सपनों में
जवान होती जा रही हो
मेरी गुड़िया
मेरे पकते बालों की तरफ देखकर
कभी तो यह सोचकर रुको
कि तेरे पापा की तनख़्वाह नहीं बढ़ रही है
तेरे कद की तरह”

(पृष्ठ- 37, समय के धागे)

आम आदमी का जीवन भारी पहियों वाले एक रथ के समान हो गया है। इसे खींचते रहना उसकी नियति बना दी गई है। उसके सपने और उल्लास पल-प्रतिपल मर रहे हैं। कवि के शब्दों में-

"बूढ़ी माँ ने फिर दोहराया होगा
नए सूट का पुराना स्वप्न
और नन्हें पैरों ने भी नापी होंगी
जूतों की कई दुकानें
और मकान के झड़ते
पलस्तर से झाँकतीं ईंटें
आज फिर खूब हँसी होंगी
क्योंकि
आज पहली तारीख है
सपनों के ज़िंदा और मर जाने का दिन
आज पहली तारीख है।"

(पृष्ठ – 38, पहाड़ अपनी जगह छोड़ रहा है)

यहाँ कवि का जीवन अनभुव है। इन कविताओं में कवि की ज़मीन, मजबूरी, ईमानदारी, संवेदना के साथ साथ उसकी सीमा भी साफ साफ देखी जा सकती है।

इसी तरह कल्याण की कविताओं में एक पिता का बेटा भी दिखाई देता है। एक ऐसा बेटा जो अपने आप को पिता के सीने में धड़कता प्यारा अहसास समझता है। यह बेटा दिवंगत पिता को याद करके फफक पड़ता है। द्रवित होकर भी वह कमज़ोर नहीं लगता। खाली

आसमान के सामने दोधारी तलवार से खींचे बेटे की व्यंजना निशब्द कर देती है। वह पिता के साहस और संघर्ष का उत्तराधिकारी है।

5- समय, डर, चीख और प्रतिरोध-

किसी समय की कविता को अपने समकाल पर पैनी नज़र रखनी चाहिए। यह इतना आसान नहीं है। दृष्टि सम्पन्न और सचेत आदमी ही समय को सही ढंग से देख सकता है। आज शत्रु सर्वव्यापक है, वह आपके फोन में दोस्ती का प्रस्ताव लेकर आएगा और प्यार करते हुए गला रेत जाएगा। बक़ौल मंगलेश डबराल-

"वह जीत कर आया है
और जानता है कि अभी पूरी तरह नहीं जीता है ...
हमारा शत्रु किसी एक जगह नहीं रहता ...
हमारे शत्रु के पास बहुत से फोन नम्बर हैं, ढेरों मोबाइल हैं
वह लोगों को सूचना देता है आप जीत गए हैं ...
हमारा शत्रु कभी हमसे नहीं मिलता सामने नहीं आता
हमें ललकारता नहीं ..."

(पृष्ठ- 15, नए युग में शत्रु)

कल्याण की कवितायें समय के हाथ में चाबुक और हिंसक नाखूनों की शिनाख्त करती हैं। वे लिखते हैं-

"वही तोड़ सकेगा जंज़ीर
लगेगा जिसे कि पाँव उसके
जकड़े हैं जंज़ीर में"

(पृष्ठ-85, समय के धागे)

दुष्यंत जी ने शेर कहा था: तुम्हारे पाँव तले कोई ज़मीन नहीं है/ कमाल यह है कि फिर भी तुम्हें यक़ीन नहीं है। कल्याण की उपरोक्त पंक्तियों में दुष्यंत की चिंता को ही रेखांकित किया गया है।

कल्याण की कविताओं में घातक समय है। डर है। चीख है। और प्रतिरोध भी है। सत्ता शोषण करने के तरीके बदलती रहती है। वह धर्म , ईश्वर, भाषा, आश्वासन, वादे, डर, उन्माद किसी भी चीज को अपना हथियार बना लेती है।

कभी डर नाम से विष्णु खरे जी ने गज़ब की कविता लिखी थी। जो फासीवादी समय का विकराल रूप दर्शाती है। इधर डरने के दिन चरम पर हैं। कल्याण इसे स्वीकार करते हुए लिखते हैं-

"मैं डरा हुआ हूँ
डरा ही रहना चाहता हूँ स्वयं से
और उस भीड़ से जो हमेशा डरी ही रहती है
मैं और किसी से नहीं डरता
डरता हूँ तो बस अपने भीतर खड़े
लोहे के पहाड़ से।"

(पृष्ठ- 78, पहाड़ अपनी जगह छोड़ रहा है)

यकीन मानिए यह डर किसी की कायरता को नहीं बल्कि सत्ता की क्रूरता को दर्शाता है। इसी कविता में आगे कवि अपने भीतर खड़े लोहे के पहाड़ के पिघलने से डर रहा है। क्या लोहे के पिघले रूप से कोई हथियार नहीं बनाया जा सकता ? कवि कहीं कहीं पर शुरुआती कविताओं से भी पीछे जाता दिखाई देता है मगर जल्दी वापस लौट आता है।

वे स्त्री संवेदना के कवि हैं। इस संदर्भ में वे हमारे कर्तव्यच्युत होते जाने को रेखांकित करते हैं-

"वह चीखी
और चीखती चली गई
ऐसे कि जैसे
चीखना उसकी
नियति बन गई हो
हमने सुना
और सुनते चले गए
ऐसे कि जैसे
हमने सुना ही नहीं"

(पृष्ठ- 26, पहाड़ अपनी जगह छोड़ रहा है)

कल्याण डरते और चीखते समय में प्रतिपक्ष और प्रतिरोध रचते हैं। वे 'बोल कि लब आज़ाद हैं तेरे' और 'हम लड़ेंगे साथी' नामक कवितायें फ़ैज़ और पाश को समर्पित हैं। उनके इंकलाबी स्वर को सुनें-

"हमारे साहस की फसलें अब तुम्हारी लगाई आग से
राख़ नहीं
बारूद बनेंगी
और हमारे नौनिहाल अब राष्ट्रगीत नहीं
पाश के लिखे गीत गाएँगे"

(पृष्ठ- 71, पहाड़ अपनी जगह छोड़ रहा है)

अपने पहले संग्रह 'समय के धागे' में भी चिंगारी और साहस का भाव लेकर आते हैं। वे बेड़ियों को तोड़ना चाहते हैं। उनके भावों में आमजन की हिम्मत देखने वाली है। एक जगह वे लिखते हैं–

"गिरा
मैं तब भी नहीं था:
जब अलगा दिया गया
दो जलते दीपकों को।"

(पृष्ठ – 28, समय के धागे)

यहाँ मैं उनकी यह पंक्तियाँ भी रेखांकित करना चाहता हूँ-

"आओ
तुम भी आओ
वक्त आ गया है कि
हवा का रुख पहचान
बादलों में आग भर दें"

(पृष्ठ-112, समय के धागे)

6- भाषा, बिम्ब और शीर्षक-

कल्याण के पास आम आदमी द्वारा बोली और समझी जाने वाली भाषा है। प्रिय कवि धूमिल ने कहा था- 'कविता भाषा में आदमी होने की तमीज है' यह भाषा और आदमी की भी सटीक परिभाषा है। इसी तर्ज पर कह रहा हूँ- कल्याण की भाषा ; कविता में आदमी होने की तमीज है । यही उनका मुहावरा है।

कविता में संवेदना के चित्र बनाने का नाम बिम्ब है। कविता की समीक्षा करते हुए बिम्ब भी एक मानदंड रहता है। आलोचकों और कवियों ने इसे अलग-अलग तरह से कविता के लिए ज़रूरी बताया है। केदारनाथ सिंह तो इसे कविता का प्राण तत्व मानते थे। यह अनुभूतियों के मूर्तिकरण का ही कमाल है कि कविताओं का मंचन भी किया जाता है। कल्याण की कविताओं में सुन्दर बिम्ब हैं। इनके मुहावरे में कहीं भी अनबूझ बिंब नहीं मिलते। कुछ उदाहरण देखें-

'नृत्य करती
दिये की लौ'

(पृष्ठ- 78, पहाड़ अपनी जगह छोड़ रहा है)

'यह कौन सी घड़ी है
जो चाबुक सी बज रही है'

(पृष्ठ- 24, पहाड़ अपनी जगह छोड़ रहा है)

'अब नहीं काट सकूँगा
ग़लतफहमियों की टहनियाँ'

(पृष्ठ- 82, पहाड़ अपनी जगह छोड़ रहा है)

'बादल बस गरजते ही हैं
और
भीग जाती हैं शहर की कई बस्तियाँ
अधिकारों की टोकरी उठाए'

(पृष्ठ- 80, पहाड़ अपनी जगह छोड़ रहा है)

'समय है कि

ठीक रात के चौथे पहर

मेरी छाती पर खाँसने लगता है'

(पृष्ठ - 81, पहाड़ अपनी जगह छोड़ रहा है)

"तुम कब तक

बंद किवाड़ों से झाँकती रहोगी

उम्र की दरारों को फाँकती रहोगी"

(पृष्ठ-79, समय के धागे)

किसी की किताबों पर बात करते हुए उसकी किताबों के शीर्षक पर ज़रूर बात होनी चाहिए। कल्याण की किताबों का नामकरण प्रवृत्ति के आधार पर है। यह उचित और न्यायसंगत है। 'समय के धागे' शीर्षक से कोई कविता नहीं है , लेकिन यह शीर्षक संग्रह की काव्य-प्रवृत्तियों को समाहित किए है। 'पहाड़ अपनी जगह छोड़ रहा है' शीर्षक व्यंजनपरक है। विकास के नाम पर पहाड़ अपनी जगह छोड़ रहा है। वह कंक्रीट , टनल, बाँध, टावर, सड़क और रेलेवे में बदल रहा है। यहाँ जड़ों से छूटते लोग हैं। विस्थापित और रिक्त होती मनुष्यता है।

संप्रेषणीयता को लेकर शीर्षक कविता एक कमज़ोर कविता है मगर इसका शीर्षक बहुअर्थी है। यह एक रुपक रचता है। संग्रह का प्रतिनधित्व करता है। वरिष्ठ लेखक नरेन्द्र मोहन जी ने भी इस किताब की भूमिका में इसके नामकरण को बहुआयामी चेतना का वाहक मेटाफर बताया है।

मूलत: कवि-

यह नहीं कहूँगा कि बंद, मैं ही हूँ, बंटवारा, बचा रहे गाँव, बादलों में आग, चीख, खेल- 1, बेटी, पहली तारीख, चलते हुए, चीख और आदमी, पिता,

मुक़द्दमा जारी है, यूँ तो रोज़ सुबह होती है , स्मृति, तुम्हारे ही बहाने से , डर, अधूरापन जैसी कविताओं के कारण कल्याण को पढ़ा जाना चाहिए। उन्हे इसलिए भी पढ़ा जाना चाहिए कि अब तक यह कवि अमर होने की लालसा लिए नहीं है।

उन्हें इसलिए भी रेखांकित करना ज़रूरी है कि वे जम्मू के साहित्यिक परिदृश्य में एक सेतु की भूमिका में रहे हैं। वे सांस्कृतिक गतिविधियों में भी सक्रिय रहे हैं। वे दूसरे संग्रह में भी अपनी पुरानी ज़मीन पर रहकर ; अपने समकाल का का चित्र खींचता है। दूसरा संग्रह पहले संग्रह का दूसरा भाग कहा जा सकता है। 14 साल में 55 कवितायें यानी एक साल में औसतन 4 कवितायें। फिर भी वे मूलत: कवि ही ठहरते हैं। मूलत: कवि नाम की एक परम्परा और श्रेणी हिन्दी में है। इसका मूल्यांकन भी कभी न कभी ज़रूर होगा। कवि/ लेखक और संपादक अविनाश मिश्र की कविता उद्धृत कर रहा हूँ-

“आततायियों को सदा यह यकीन दिलाते रहो
कि तुम अब भी मूलत: कवि हो
भले वक़्त के थपेड़ों ने
तुम्हें कविता में नालायक़ बनाकर छोड़ दिया है
बावजूद इसके तुम्हारा यह कहना
कि तुम अब भी कभी कभी कवितायें लिखते हो
उन्हें कुछ कमज़ोर करेगा ।”

(पृष्ठ-11, अज्ञातवास की कवितायें)

जी हाँ, जोड़ने के नाम पर कल्याण जी की कविताई हिन्दी कविता में इतना जोड़ती है कि यह अपने एक कवि को मूलत: कवि ही रहने देती है। यानी इस घातक दौर में भी उसे बचा लेती है। यही कवि और उनकी किताबों की उपलब्धि है।

ooo

हिन्दी सूफी साहित्य में प्रेम के विविध पक्ष

-प्रवीण कुमार सहगल

हिन्दी साहित्य की प्रेमाख्यान परम्परा में सूफी प्रेमाख्यानों का महत्वपूर्ण स्थान है। हिन्दी साहित्य में सूफी साहित्य का समय लगभग चौदहवीं शताब्दी से अठारहवीं शताब्दी के मध्य माना गया है। सूफी साहित्य परम्परा को विभिन्न विद्वानों ने अनेक नामों से पुकारा है , जैसे-प्रेममार्गी शाखा , प्रेम काव्य , प्रेम कथानक काव्य, प्रेमाख्यान काव्य, सूफी काव्य आदि। इन नामों से यह ज्ञात होता है कि इस साहित्य परम्परा में प्रेम तत्व की प्रधानता है। सूफियों का प्रेम तत्व परम्परागत भारतीय श्रृंगार भावना से थोड़ा भिन्न है।

सामान्य श्रृंगार विषयक साहित्य में विवाह, दाम्पत्य एवं सामाजिक जीवन की मर्यादाओं को स्वीकार करने वाले पारिवारिक प्रेम का चित्रण किया जाता रहा है, लेकिन सूफी साहित्य में प्रेम के शुद्ध स्वच्छन्दतापूर्ण दृष्टिकोण , सौन्दर्य भावना, साहसपूर्ण क्रिया-कलाप एवं समाज विमुख प्रणय भावना का चित्रण हुआ है। इस प्रवृति को विश्व साहित्य में स्वच्छन्द प्रेम कहा जाता है। जब कोई भी समाज परम्पराओं, रुढ़ियों और मर्यादाओं से अत्यधिक जकड़ जाता है , तब उसकी प्रतिक्रिया के परिणामस्वरुप स्वच्छन्दता या उन्मुक्तता का आना स्वाभाविक है। इसी के परिणामस्वरुप विभिन्न भाषाओं के साहित्य में स्वच्छन्द प्रेम की प्रवृ त्तियों का चित्रण होता रहा है।

सूफी साहित्य परम्परा की शुरुआत सन् 1370 में मुल्ला दाऊद के "चंदायन" से होती है। इस धारा के प्रमुख कवि मलिक मुहम्मद जायसी हैं।

जायसी के अतिरिक्त कुतुबन (मृगावती), मंझन (मधुमालती), उस्मान (चित्रावली), कासिमशाह (हंस जवाहिर) आदि महत्वपूर्ण रचनाकार हैं। सूफी काव्यधारा में इन कवियों ने प्रेम को साधना का मार्ग बताया है। इस धारा के साधक परमात्मा को पत्नी एवं आत्मा को पति के रुप में स्वीकार करते हैं। सूफी साधक ईश्वर के साथ भय का नहीं , बल्कि प्रेम का संबंध स्थापित करते हैं। इश्कमजाजी से इश्कहकीकी की यात्रा में विश्वास रखते हैं। इनके यहां प्रेम तत्व सर्वोपरि है।

सूफी साधकों का प्रेम "प्रच्छन्न" के प्रति है। सूफियों ने अपने प्रबन्ध काव्यों में जिस प्रेम का परिचय दिया , वह पूर्ण रूप से अलौकिक होते हुए भी लौकिक था। सूफी अपनी प्रेम व्यंजना साधारण नायक, नायिका के रूप में करते हैं। प्रसंग सामान्य प्रेम का ही रहता है, किन्तु उसका संकेत "परम प्रेम" का होता है। सूफी साहित्य में लौकिक और अलौकिक प्रेम दोनों साथ. साथ चलते हैं। प्रस्तुत में अप्रस्तुत की योजना होती है। सूफी प्रबन्ध साहित्य में लौकिक पात्रों के मध्य लौकिक प्रेम की व्यंजना करते हुए भी अलौकिक की स्थापना करने का दुरुह प्रयास किया गया है।

प्रेम का आदर्श पक्ष वह है , जिसका प्रस्फुटन विवाह के पश्चात होता है। इसका विकास जीवन क्रम के साथ उत्तरोत्तर होता चलता है। जीवन की गहन और विषम परिस्थितियों में भी प्रेम की गम्भीरता तथा गूढ़ता बढ़ती ही जाती है। इस प्रेम में एकनिष्ठता की भावना के साथ ही कर्त्तव्य की दृढ़ भावना का भी समन्वय रहता है। प्रेम न तो मात्र वासना तृप्ति का ही साधन है और न कर्त्तव्य कसौटी। कर्त्तव्य और भावना का सहर्ष समन्वय ही प्रेम है।

प्रेम का एक अन्य पक्ष गुण-श्रवण , चित्र-दर्शन, स्वप्न-दर्शन या साक्षात् दर्शन से प्रारम्भ होता है। इस प्रकार के प्रेम में नर और नारी मिलन का प्रयास करते हैं और अधिकांश अवसरों पर उनका मिलन हो भी जाता है। सूफी साहित्य में इस प्रकार के प्रेम की प्रधानता है। इसमें प्रेम की गम्भीरता एवं शुचिता का अभाव नहीं होता , किन्तु इसकी अपेक्षा विवाह के पश्चात होने वाले प्रेम में कर्त्तव्यनिष्ठा अधिक मिलती है। प्रेम के इस स्वरुप का परिचय सूफी प्रेमकथाओं में मिलता है। लगभग सभी नायक-नायिका , जो परमात्मा का स्वरुप है , रूपगुण श्रवण सुनकर अथवा स्वप्न में या साक्षात् देखकर उसके विरह में व्याकुल हो जाते

हैं, और घर-परिवार त्याग योगी बन जाते हैं। गुण-श्रवण के द्वारा प्रेम भावना जाग्रत होने वाली कथाओं के अन्तर्गत पद्मावत, हंसजवाहिर, अनुराग बांसुरी आदि कथाएं आती है। "छीता" प्रेमाख्यान में गुणश्रवण से आकर्षण एवं इसके पश्चात साक्षात् दर्शन से प्रेम जागृत होता है। चित्र दर्शन से प्रेमोद्भूत होने वाली कथाओं में चित्रावली, रतनावति आदि कथाएँ आती है। स्वप्न दर्शन के द्वारा प्रेम जाग्रत होने वाली कथाएं अधिक हैं। कनकावती , कामलता, इन्द्रावती, प्रेमदर्पण आदि प्रेमाख्यान इसके अन्तर्गत आते हैं। साक्षात् दर्शन द्वारा प्रेम जागृति का वर्णन मधुमालत, मधुकर-मालति एवं प्रेमरस आदि में मिलता है।

सूफी साहित्य में प्रेम और रूप का चिर संबंध दिखाया गया है। वह परमात्मा सौन्दर्यमय है। उसका रुप इस जगत में व्याप्त है। रूप स्वयं प्रेम को आकर्षित कर लेता है। "प्रेमरस" के रचयिता शेख रहीम ने इसे सिद्ध भी कर दिया है। "मुल्तान अविद" ने युद्ध में प्रेमसेन को मृत्यु के घाट उतारकर जब महल में प्रवेश किया तो वह "चन्द्रकला" का सौन्दर्य देखकर मंत्रमुग्ध हो गया और उसने सोचा कि जब यह मनुष्य इतना अधिक सुन्दर है , जो परमात्मा का केवल प्रतिबिम्ब मात्र है , तो वह जो सबका रचयिता है , वह कितना सुन्दर होगा। इसी भावना से व्याकुल होकर "मुल्तान अविद" परमरुप का वियोगी, प्रेमी होकर चल पड़ा। इस सृष्टि का कारण "प्रेम" है। प्रेम के वशीभूत हो परमसत्ता ने सृष्टि की रचना की। प्रेम और रुप का अनन्य संबंध है। जिस प्रकार रूप से प्रेम को प्रेरणा मिलती है, उसी प्रकार रूप और प्रेम के उद्भूत हो जाने पर विरह का अनुभव होना स्वाभाविक है। कवि उसमान इन्हीं तत्वों को सृष्टि का मूल मानते हैं:-

"**आदि प्रेम विधि ने उपराजा, प्रेमहि लाल जगत सब साजा।**
प्रेम किरन ससि रूप जेऊं, पानि प्रेम जिमि हेम, हि विधि जहं जहं जानियहु, जहां रुप तहं प्रेम।"

सूफी साधकों ने प्रिय के सौन्दर्यमय रूप की कल्पना "मधुबाला" या "साकी" के रूप में की है जो अपने रूप की मदिरा से जगत में प्रेम उकसाती है। उसके रूप सौन्दर्य का पान करके प्राणी सुधबुध खोकर "बावला" या "मतवाला" हो जाता है। इसी तथ्य को कवि इस प्रकार व्यक्त करता है कि उस सुन्दरी बाला

के हाथ में सुराही एवं प्याला है। वह तुम्हें मदपान कराके सारी चिन्ताओं से मुक्त करके मतवाला बना देगी:-

"है घन हाथ सुराही प्याला,
दै मद तुम्हैं करैं।"

सूफी कवि कासिमशाह ने "हंसजवाहिर" में परम सौन्दर्यशाली परमात्मा को प्रेम का आलम्बन बताया है और जीवात्मा को आश्रय। जीवात्मा , परमात्मा से बिछुड़कर सदैव दुःखी रहा करती है। पहले जीवात्मा और परमात्मा में भेद न था , किन्तु जगत में उत्पन्न होकर दोनों में बिछोह हो गया। यही कारण है कि उसे परमात्मा के सौन्दर्य का आभास मात्र होते ही उसके सुप्त प्रेम की चिंगारी यदि हृदय में सुलग गई तो बुद्धि और तर्क नष्ट हो जाता है। प्रेम की अग्नि सुलगते ही सारे संशय, तर्क और जिज्ञासा शान्त हो जाती है, प्रेम मार्ग प्रशस्त हो जाता है:-

"भुला सबै जगत का धन्धा,
पड़ा जो आन प्रेम का फन्दा।"

प्रेम जिस प्रकार बरबस उत्पन्न होता है , उसी प्रकार सच्चे प्रेम की लगन भी बरबस बढ़ती जाती है। प्रेम की निश्चयात्मकता के कारण प्रिय प्राप्ति की दुरुहता, प्रयास के कष्ट , त्याग एवं आपा मिटाने की भावना दृढ़ होती जाती है। प्रेमी की साध्य केवल प्रिय प्राप्ति होता है। वह किसी वस्तु की आकांक्षा नहीं करता, यहीं कारण है कि जीवन के सुख-ऐश्वर्यों का लोभ उपस्थित होने पर वह पथ विचलित नहीं होता। राजकुंवर "इन्द्रावती" में इसी प्रकार अपने प्रेम की एकाग्रता का परिचय देता है- "जिसके प्रेम ने मुझे बावला बना दिया है , जिसने मुझे सुख-ऐश्वर्य से विमुख कर दिया है , उसके अतिरिक्त ओर किसी वस्तु से मेरा कोई संबंध नहीं।"

नूरमूहम्मद ने "इन्द्रावती" में प्रेमानुभूति को आनन्ददायक बताया है , लेकिन उन्होने विरहानुभूति के कष्टों का भी वर्णन किया है। कवि के अनुसार सच्चा प्रेम एक बार उत्पन्न होकर निरन्तर बढ़ता जाता है। आरम्भ में प्रेमानुभूति आनन्ददायक होती है, किन्तु विरह होते ही जिन कष्टों का सामना करना पड़ता है,

वे प्रेम मार्ग को अत्यंत दुरुह बना देते हैं। प्रेम मार्ग की दुरुहता उसकी गति अवरुद्ध करने में असमर्थ होती है। तीन सौ सत्तर मन सिर पर बोझ रखकर एक पैर से चलना जितना कठिन है, उतना ही कठिन प्रेम मार्ग पर अग्रसर होना है:-

"सत्तर सिर मन तीन सै, पांव एक सें जाहि,
प्रेमी को दुख देव सो, प्रेम पन्थ यह आहि।"

सूफी कवि नूरमुहम्मद ने "अनुराग बांसुरी" में भावनाओं के परिष्कार की बात की है कि अंह के अतिरिक्त , प्रिय की महानता साधक को प्रेम मार्ग से यदा-कदा विरत करती है। लोकदृष्टि भी राजा-रंक के प्रेम संबंध की अवहेलना करती है। किन्तु साधक ऐसी शंका का निवारण कर लेता है। उत्तम का ध्यान करने से मनुष्य की भावनाएं उच्च होती है। निम्नतम भावनाओं का भी आलम्बन महान होने पर उन भावनाओं का परिष्कार होता है:-

"कहा कुंवर उत्तम के नेहा, दाऊ जगत लहै यह दहा,
उत्तम ध्यान धरै मन दुरपन, निर्मल होई विलोकै दरसन।"

सूफी साधक प्रेम को सब कुछ मान , अन्य भावों की उपेक्षा करते हैं। वे भली-भांति जानते हैं कि प्रेम सब रसों का मूल है। इश्क या प्रेम ही इस जगत का सार है। प्रेम के उत्पन्न हो जाने पर संसार का सारा ज्ञान उसके सम्मुख तुच्छ हो जाता है। जब जीव का गुरु प्रेम हो जाता है , प्रेम के ज्ञान से चित्त में जो प्रकाश होता है, उसके सम्मुख जगत ज्ञान तुच्छ है। यह सारा संसार प्रीति एवं दया के वशीभूत है। प्रीति के फन्दे ने सारे संसार को फंसा रखा है। नूरमुहम्मद की भांति शेख रहीम भी प्रेम और दया को कर्मकाण्ड और ज्ञान से श्रेष्ठ समझते हैं। यदि दया और प्रेम का स्थान हृदय में नहीं है , तो हृदय कंकड के समान मूल्यहीन है। जब दया, प्रेम का निवास हृदय में हो जाता है तो वहां अन्त्रतयामी की प्रतिष्ठा स्वयं हो जाती है। हृदय काबा एवं कैलाश के समान पवित्र हो जाता है:-

"दया प्रेम जेहि हिय बसे, सो काबा कैलास।
अन्तरजामी आप रब, करे हीएं पर बास।"

सूफी सदैव हृदय शुद्धि का ध्यान रखते है और भावना को तर्क की अपेक्षा श्रेष्ठ समझते हैं। वे सारे कर्मकाण्ड , कर्त्तव्य, भावना या बुद्धि-विलास को त्यागकर हृदय में निरन्तर उसका ध्यान किया करते हैं। हृदय में बसी मूर्ति को भी ये कण-कण में व्याप्त देखते हैं। हृदय और नैनों की मूर्ति में कोई अन्तर नहीं होता:-

"जब एक मूरति हिए समाली,
दूसर कहां बिलौके ज्ञानी।"

सूफियों का विश्वास है कि प्रेम का मार्ग सत्य का मार्ग है। प्रेम का आविर्भाव प्रत्येक हृदय में नहीं होता। वह हृदय धन्य है जिसमें प्रेम की चिंगारी सुलगती है। प्रेम ज्ञान किसी सौभाग्यशाली के हृदय में ही जाग्रत होता है:-

"सरग बूंद सब हांहि न मोती,
सब घर विरह दई नहीं जोती।"

सूफी साहित्य में विरह का बड़ा महत्व है। प्रेम की भांति , सूफी विरह को भी मूल पदार्थ मानते हैं। विरह के कारण ही प्रेम का अस्तित्व है। विरह ही प्रेम का सार है। प्रेम तीव्र , गम्भीर एवं अहेतुक होने के साथ ही त्याग एवं समर्पण की भावना से युक्त होता है। जो प्रेम के मार्ग में प्राणों का भी त्याग कर सके , वही सच्चा प्रेमी है। कवि मंझन भी स्वीकार करते हैं कि जिस व्यक्ति में अपना सीस उतारकर हाथ में लेने की सामर्थ्य हो, वही इस मार्ग पर अग्रसर हो सकता है। प्रेम और रूप का चिर संबंध है। सूफी प्रेम कथाओं में प्रेम का आविर्भाव रूप-दर्शन या गुण-श्रवण से हुआ है। रूप और प्रेम के इस अविच्छिन्न संबंध का भी एक रहस्य है। मनुष्य , जिसे इन कवियों ने सौन्दर्य का आधार माना है , वह ईश्वर की प्रतिछवि है:-

"देखो निरख परख मोहि काया,
मैं कत अहो अहो वह छाया।"

परम सौन्दर्यशाली परमात्मा के सौन्दर्य पर मोहित जाना , कर्ता के अनिर्वचनीय रूप के बलिहारी जाना है। यही कारण है कि सूफी साधक इश्कमजाजी की अवहेलना नहीं करते। लोकप्रेम उपेक्षणीय नहीं है , बल्कि लौकिकता एवं सांसारिकता त्याज्य है। कवि नसीर कृत "प्रेमदर्पण" में युसूफ के अद्वितीय सौन्दर्य को देखकर सौदागर की पुत्री में स्वभावतः उसके रचयिता का परिचय पाने की जिज्ञासा जाग उठी थी:-

"**अचरज रूप अति तोर मनोहर, देखत के जिया जाय,**
कौन है इहकर सिरजनहारा, दियो न मोहि बताय।"

इस जिज्ञासा की शान्ति शेख रहीम ने बड़ी सफलता से की है , कि जिस प्रकार मूर्ति की सुन्दरता कलाकार की कुशलता का परिचय देती है , उसी प्रकार मानव सौन्दर् परमेश्वर के अनन्त सौन्दर्य का परिचय देता है। निष्कर्ष यह है कि इस सुन्दर सृष्टि का निर्माणकर्ता परमेश्वर अद्वितीय है। सौन्दर्य, शक्ति एवं शील में कोई उसका उपमान नहीं। इस प्रकार सूफियों का प्रेम परमप्रेम प्राप्ति का सोपान है। सूफी साहित्यकारों ने लौकिक प्रेम में भी अलौकिकता का समावेश किया है। भावनाओं का उच्च आधार या आलम्बन ही भावनाओं को उच्च एवं महान बनाता है। हृदय की इच्छाओं एवं भावनाओं को परमतत्व को समर्पित कर देने से ही उनका परिमार्जन और उन्नयन हो जाता है। कवि नूरमुहम्मद ने इस तथ्य की व्याख्या की है- "राजकुंवर, चेता माजिन से कहता है कि मैं जोगी हूं , किन्तु प्रेम पन्थ का जोगी होने के कारण उत्तम की ही भीख ग्रहण करता हूं। सत्य है, जिसके हृदय में महान व्यक्ति का प्रेम है, वही व्यक्ति ऊँचा है। जो नीचों से स्नेह करता है, वही नीच है।"

सूफी प्रेमाख्यानों में प्रेम लौकिक पक्ष से अलौकिक की ओर अग्रसर होता है। सूफी साधक जगत के सारभूत सत्य परमसत्ता को ससीम एवं असीम दोनों मानता है। जीव , जो ससीम एवं न्यूनतम ये युक्त है , परमात्मा को उपलब्ध करना चाहता है। इसी प्रेम के स्वरूप को व्यक्त करने के लिए सूफियों ने परमसत्ता को कण-कण में व्याप्त दिखाया है। उन्होने लौकिक प्रेम में अलौकिकता की प्रतिष्ठा की है तथा मानवीय प्रेम का आध्यात्मीकरण किया है।

सूफी काव्य में मानवीय प्रेम की प्रतिष्ठा आध्यात्मिक प्रेम के सोपान रूप में मिलती है।

सूफी सिद्धान्त के अनुसार , जीव और परमात्मा में पारमार्थिक अन्तर नहीं है। परमात्मा और जीव का संबंध अति प्राचीन है। कवि मंझन जीव और परमात्मा के इस प्रेम संबंध को स्पष्ट स्वीकार करते हैं। वे मानते हैं कि आत्मा और परमात्मा, पृथ्वी और गगन पहले एक थे , तभी विलग होने के बाद से जगत का कण-कण उससे मिलने को आतुर है। सारा संसार उसके विरह से पीड़ित है:-

"धरती गगन मिले हुत दोऊ,
केइ निनार के दीन्ह बिछोह।"

सूफी कवियों के अनुसार, जीवन में प्रेम की व्याप्ति ही आनन्द है। जगत की सृष्टि प्रेम के कारण ही हुई। प्रिय प्राप्ति की कठिनता के कारण सूफी प्रेम में भी परकीया प्रेम की भांति तीव्रता एवं व्यग्रता होती है। सगुण और निर्गुणोपासकों की भांति वह परमात्मा को व्यक्त भी मानता है और अव्यक्त भी। सूफियों का कल्व केवल भावनाओं का ही संस्थान नहीं, प्रत्युत ज्ञान और भाव चित्र भी इसी में अंकित होते हैं। सूफी साधकों का प्रेम ऐकान्तिक और भावविहल है। सूफी प्रेम और दया को आवश्यक समझते हैं। शेख रहीम का कथन है कि किसी भी धार्मिक सम्प्रदाय का अनुयायी हो , उसे दया-धर्म नहीं छोड़ना चाहिए , क्योंकि जिस मत में दया धर्म होता है, वहीं परमेश्वर निवास करता है:-

"सबसे कहौं दोउ कर जोरे, क्षमा कियो सब औगुन मोरे।
तजो न दया धरम तुम, चाहै जो मत होय।"

सूफी साहित्य में प्रेम के बहुप्रयुक्त रूपकों में चकोर और चन्द्रमा, कमल और सूर्य, राग और हिरण मुख्य है। इन रूपकों से प्रेम के भिन्न गुणों एवं स्वरूपों का परिचय मिलता है। चकोर और चन्द्र, कमल और सूर्य के रूपक स्पष्ट करते हैं कि काल, स्थान एवं स्तर का अन्तर प्रेम में मान्य नही है। राग और हिरण का रुपक तन्मयता, तल्लीनता तथा समर्पण का आदर्श है। सूफियों ने अपने ग्रन्थों की

रचना हिन्दी भाषा और फारसी लिपि में की। इनके प्रेमाख्यानों पर भारतीय प्रेमाख्यान परम्परा एवं फारसी की मसनवी काव्य शैली का प्रभाव है।

सूफी साहित्य में प्रेम के शुद्ध स्वच्छंदतापूर्ण दृष्टिकोण , सौन्दर्य भावना, साहसपूर्ण क्रिया-कलाप एवं समाज-विमुख प्रणय भावना का चित्रण हुआ है। इसलिए सूफी साहित्य की विशिष्टता को प्रारम्भ में फारसी प्रभाव या सूफी प्रभाव की देन कहते हुए अभारतीय कहा गया। लेकिन आगे चलकर यह माना गया कि स्वच्छंदता, सौन्दर्य, सहस, कल्पना आदि से मिश्रित प्रणय भावना किसी भाषा विशेष, देश विशेष या सम्प्रदाय विशेष की विशेषता न होकर एक ऐसी सार्वजनिक प्रवृति है, जो हर भाषा और हर देश के साहित्य में समय-समय पर अभिव्यक्त होती रही है। इस प्रवृत्ति को विश्व साहित्य में "रोमांस" अर्थात् "स्वच्छंद प्रेम" कहा गया है।

सूफी प्रेमाख्यानों में प्रेम की गति विषम से सम की ओर है। प्रेम की स्थापना साध्य के रूप में न होकर साधन के रूप में है। सूफी साधक , एक ओर जहां प्रेम की एकनिष्ठता और हृदय की शुद्धि पर विश्वास करता है , वहीं वह प्रिय और उसके प्रेम को प्राप्त करने के लिए जिक्र , फिक्र, नमाज, जियारत, हज्ज, जक़ात, सौम, रोजा आदि ऐसी क्रियाओं में भी विश्वास करता है। हृदय की शुद्धि , शारीरिक कष्ट साधना और शरीयत के नियमों का समन्वय ही सूफी प्रेम साधना का स्वरूप है।

ooo

हिंदी ग़ज़ल में राष्ट्रीय चेतना

-डॉ.बबीता रानी श्रीवास्तव

भारतवर्ष में स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद कई आतंरिक समस्याओं का उदय हुआ | उनमें से कुछ प्रमुख हैं – साम्प्रदायिकता, अलगाववाद, भाषावाद, आतंकवाद, सीमावाद आदि | इन समस्याओं ने देश की एकता और अखंडता को खतरे में डाल दिया है | लोगों के मन में देशहित की भावना गौण हो गई है | इनके जीवन में पहले स्थान पर अपना धर्म , अपनी जाति, अपना प्रांत, आ गया है |

फलस्वरूप देश में राष्ट्रीय एकता और आपसी सामंजस्य में दिनोंदिन ह्रास हो रहा है | इस भाव की कमी देश की एकता में बाधक है | इसी समस्या को उजागर करते हुए हिंदी ग़ज़लकारों ने अपनी ग़ज़लों के माध्यम से लोगों में राष्ट्रीय चेतना को जागृत करने का प्रयास किया है | हिंदी के गज़लकार यादराम शर्मा ने अपनी ग़ज़लों द्वारा एकता और सामंजस्य की भावना, अलगाव की भावना को दूर करने , आपसी प्रेम एवं सद्भाव को बढ़ाने का अद्भुत प्रयास किया है |

“फिर कहीं कोई अलगाव की बातें न हो

फिर कहीं आपसी टकराव की बातें न हो |

आरजू मेरी यही शुभ हो सुखद अपना मिलन

फिर कहीं भी प्यार के बिखराव की बातें न हो ।

.....

एक हों टुकड़े बँटे, नेह पथगामी बने

आपसी विश्वास हो, दुर्भाव की बातें न हो ।"

(समकालीन हिंदी ग़ज़ल, सं. मधुर नज्मी, पृ. 55)

धर्म और जाति से बढ़कर राष्ट्रहित की बात करते हुए अवध किशोर सक्सेना ने ऐसे लोगों को समझाने का प्रयास किया है जो पाषाण हृदय बनकर देश की अखंडता और एकता को नष्ट करने की बात करते हैं ।

यथा-

" वे जी रहे क्यों भला शैतान की तरह,

उनके हृदय क्यों हो गए पाषाण की तरह ।

औरों का खून पी के उन्हें लाभ क्या मिला,

वीरान चमन कर रहे हैवान की तरह ।

अपने ही पाँव पर जो कुल्हाड़ी हैं गिराते,

बर्बाद होते, ईराक या ईरान की तरह ।

उफनो न ज्वालामुखी के तूफानों की तरह,

धर्म और जाति से बड़ा है राष्ट्रहित, सखे,

हर बात सोचो समझो, इन्सान की तरह ।"

(वातावरण ख़राब हो चला, अवध किशोर सक्सेना, पृ. 15)

पंजाब जो बलिदान की भूमि रहा है वहाँ आतंकवाद , अत्याचार और अनाचार को देखकर हिंदी गज़लकार का भाव विभोर हो जाना स्वाभाविक है । अवध किशोर सक्सेना ने आतंकवादियों को संबोधित करते हुए अपनी ग़ज़ल में कहा है कि –

"नानक की आत्मा करती है हाय – हाय,

दीनों का संहार, आँख भिगो गया ।

तेगबहादुर की कुर्बानी रोती है,

आतंकवाद, इतिहास पुराना धो गया ।"

(वातावरण ख़राब हो चला, अवध किशोर सक्सेना, पृ. 39)

एकता विकास की कुंजी है । जिस राष्ट्र में लोगों में मिलजुलकर रहने की भावना नहीं होती वह राष्ट्र नष्ट हो जाता । किसी भी प्रकार का निर्माण नहीं हो सकता तथा उन्नति भी नहीं हो सकती । अतः लोगों का आपस में कटे – कटे रहना उचित नहीं है –

"लोग परस्पर रहते बेहद कटे – कटे,

अनगिनत खेमों में रहते बँटे - बँटे ।

.....

जहाँ एकता नहीं सृजन कैसे होगा,

वाक्य बोलें लोग बहुत ही कटे – कटे ।"

(वातावरण ख़राब हो चला, अवध किशोर सक्सेना, पृ. 45)

हिंदी ग़ज़लकारों ने अपनी ग़ज़लों के माध्यम से देश में एकता और सामंजस्य स्थापित हो सके , ऐसे भावों को अभिव्यक्त किया है । प्रत्येक व्यक्ति को अपने देश से प्रेम होना चाहिए । देश के लिए मरना और देश के लिए जीना यह प्रत्येक व्यक्ति का धर्म होना चाहिए । क्योंकि राष्ट्रीय एकता पर ही देश की उन्नति निर्भर होती है ।

इसी भाव को अभिव्यक्ति दी है इशराक बिलरामी ने । वे कहते हैं –

"हमारी एकता का विश्व में ऐलान हो जाए,

नज़र जिस मुल्क पे जाए वो हिंदुस्तान हो जाए ।

वतन से हर एक शख्स को इतनी मोहब्बत हो,

जरूरत हो तो अपने मुल्क पे कुर्बान हो जाए ।

वतन के वास्ते मरना वतन के वास्ते जीना,

हमारा आपका सबका यही ईमान हो जाए ।

वतन की एकता पर है निर्भर अपनी खुशहाली,

ये मत चाहो ये आबाद घर वीरान हो जाए ।"

(निर्झर – हिंदी ग़ज़ल विशेषांक, सं. अखिलेश सक्सेना, पृ. 32)

देश में धर्म के नाम पर होने वाले विवादों के कारण देश की एकता और सामंजस्य में बाधा उत्पन्न होती है | आज व्यक्ति किसी धर्म का होने से पहले एक इन्सान है | सारे भेदभाव भुलाकर यदि मनुष्य केवल मात्र इन्सान हो जाए तो सारे विवाद अपने आप नष्ट हो जाएँगे |

"काश ऐसी भी मोहब्बत हो कभी इस देश में,

मेरे घर उपवास हो जब तेरे घर रमजान हो |

मज़हबी झगड़े ये अपने आप सब मिट जाएँगे,

और कुछ होकर न गर इन्सान बस इन्सान हो |"

(नीरज की पाती, गोपालदास सक्सेना 'नीरज', पृ. 125)

आपसी मतभेद और टकराव की स्थिति का लाभ उठाते हुए पड़ोसी मुल्क लोगों को आपस में लड़वाकर तमाशा देखते हैं | इसलिए यह आवश्यक है कि –

"मेरे दुख –दर्द का तुझ पर हो असर कुछ ऐसा,

मैं रहूँ भूखा तो तुझसे भी न खाया जाए |

जिस्म दो हो के भी दिल एक हो अपने ऐसे,

मेरा आँसू तेरी पलकों से उठाया जाए |"

(नीरज की पाती, गोपालदास सक्सेना 'नीरज', पृ. 130)

लोगों को हिंसा, घृणा एवं अन्याय की भावना से मुक्त कर देश में एकता और समरसता का निर्माण करने की आवश्यकता है | इसी बात को सुनील त्रिवेदी 'जोगी' ने अपनी एक ग़ज़ल में कहा है –

"क्या किसी के वेश की परिवेश की चर्चा करें,

आइए मिल करके अपने देश की चर्चा करें |

.....

त्यागकर हिंसा, घृणा, अन्याय बदले रीतियाँ,

प्रेम से पूरित नए विश्वेश की चर्चा करें |"

(बहुरंगी हिंदी गज़लें, सं. डॉ. रोहिताश्व अस्थाना, पृ. 157)

इस प्रकार हमने देखा कि हिंदी ग़ज़लों में राष्ट्रीय चेतना के स्वर बड़े ही सशक्त रूप से वर्णित हुए हैं | ग़ज़लकारों ने यह समझाने का प्रयत्न किया है कि देश के विकास के लिए एकता बहुत जरूरी है | प्रत्येक व्यक्ति में राष्ट्रीयता की भावना होना नितांत आवश्यक है | राष्ट्र सर्वोपरि है | धर्म और जाति उसके पश्चात् |

ooo

बाल साहित्य का परिदृश्य

– दिनेश प्रताप सिंह 'चित्रेश'

बाल साहित्य की चर्चा शुरू होते ही हमारे सामने कहानी, लेख, कविता, नाटक, उपन्यास, संस्मरण, जीवनी जैसी विधाओं में लिखी वह रचनायें आती हैं, जिनके सृजन का घोषित उद्देश्य 'बच्चों का मनोरंजन' है। इस क्रम में लोरी, प्रभाती, और पहेलियाँ तो होती ही हैं बच्चों के लिए। कहा जाता है, लोककवि अमीर खुसरो (1253–1325) बच्चों के पहले कवि थे। यद्यपि अमीर खुसरो ने अपनी पहेलियाँ दोसुखने और ढकोसलों (नानसेंस राइम्स) का सृजन भले ही बच्चों के लिए नहीं किया था, लेकिन परम्परागत रूप से बच्चों के बीच लोकप्रिय रही यह रचनायें बाल साहित्य की धरोहर बन चुकी हैं। इसलिए उपर्युक्त कथन में कोई दोष नहीं हैं।

कवि एवं आलोचक दिविक रमेश ने सन् 1623 में जटमल द्वारा लिखी 'गोरा बादल की कथा' को बच्चों की पहली पुस्तक माना है। साथ ही भारतेन्दु युग के पूर्व राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द को बाल कहानी के सूत्रपात का श्रेय दिया है। इस सिलसिले में उन्होंने 'राजा भोज का सपना', 'बच्चों का ईनाम' और 'लड़कों की कहानी' की चर्चा की है। वैसे बच्चों की कहानी की परम्परा काफी पुरानी है। शहर से लेकर गाँव तक लोक गाथायें (जो गाकर सुनाई जाती थीं), भूत–प्रेत की डरावनी कहानियाँ, अकबर–बीरबल, तेनालीराम, गोनूझा, गोपाल भाड़, नसीरुद्दीन आफंती के बुद्धि कौशल के चमत्कार भरे किस्से खूब प्रचलित थे।

तमाम खेलगीत और बुझौलियाँ थीं। बीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध के आरम्भिक दशकों तक बुजुर्गों के जरिए यह सब खूब प्रचलन में था।

बीसवीं सदी के शुरुआती दौर में पहले पं0 रामनरेश त्रिपाठी और फिर देवेन्द्र सत्यार्थी ने मौखिक परम्परा के इस लोक साहित्य की खोज बड़ी निष्ठा, लगन और श्रम से किया था।

उन्नीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध तक प्रौढ़ और बाल साहित्य के बीच कोई विभाजन नहीं था। दरअसल तब समाज में बच्चे के स्वतन्त्र अस्तित्व की स्वीकृति ही नहीं थी। बच्चे मानव के लघुरूप अथवा अप्रशिक्षित मानव समझे जाते थे। माता–पिता, अध्यापक और समाज के वरिष्ठ जनों की जिम्मेदारी में यह शामिल था कि वे बच्चों को समाज की भावी सदस्यता के योग्य बनायें। ऐसी स्थिति में उसे प्यार–दुलार मिलता था। उसकी शिक्षा–दीक्षा की व्यवस्था होती थी, लेकिन आयु सापेक्ष बालोचित अनुभूतियों, आकांक्षाओं और कल्पनाओं पर कम ध्यान दिया जाता था।

इसलिए बच्चों की रुचि और आयु वर्ग के अनुकूल बौद्धिक, संवेगात्मक और सामाजिक विकास को ध्यान में रखकर बाल साहित्य का सृजन नहीं होता था। साहित्य के रूप में जो भी था–लोक अथवा नागर साहित्य–उसके सहज, सुबोध और मर्मस्पर्शी अंश को सुन–पढ़कर बच्चे भी मनोरंजन कर लेते थे।

बच्चों की लोकप्रिय पत्रिका 'नन्दन' के सम्पादक जयप्रकाश भारती ने एक बार कहा था–'वह रचनायें जिसे बच्चे और सयाने समान रुचिपूर्वक पढ़ें, वही सच्चा बाल साहित्य है।' इस कथन के बरअक्स बच्चों के साहित्य का दायरा काफी बढ़ जाता है। साहित्य का वह अंश, जो उत्कृष्ट, रम्य और सुबोध है, अपने आप बाल साहित्य में समाहित हो जाता है। यही कारण है कि 'पंच परमेश्वर', 'ईदगाह' (प्रेमचन्द्र), 'मधुवा' (जयशंकर प्रसाद), 'शरणागत' (वृन्दावनलाल वर्मा), 'हार की जीत' (सुदर्शन), 'काकी' (सियारामशरण गुप्त), 'अमराई' (सुभद्रा कुमारी चौहान) जैसी कहानियों के साथ–साथ 'रामचरितमानस' का परसुराम लक्ष्मण सम्वाद और 'यशोधरा' महाकाव्य का 'माँ कह एक कहानी' वाला अंश बच्चे खूब पसन्द करते हैं। महादेवी वर्मा के संस्मरण और रेखाचित्र, रूपनारायण पाण्डेय और मन्नन

द्विवेदी की लिखी जीवनियाँ, श्रीराम शर्मा व वृन्दावनलाल वर्मा की शिकार कथायें भी बच्चों की पसन्दीदा रचनायें हैं।

भारतेन्दु हरिचन्द्र कृत 'अंधेर नगरी चौपट राजा' और 'सत्यवादी हरिश्चन्द्र' भी बच्चों के अत्यन्त प्रिय नाटक हैं। अंधेर नगरी में प्रयुक्त 'चने का लटका' और 'चूरन का लटका' तो बच्चे ऐसे सहज उल्लास के साथ गाते हैं कि लगता है यह लिखा ही उन्हीं के लिए गया है।

बच्चों के लिए अलग से पत्रिका निकालने और साहित्य लेखन का प्रयास भारतेन्दु युग में हुआ। बच्चों की पहली पत्रिका 'बाल दर्पण' का प्रकाशन सन् 1882 में हुआ। यह अल्पजीवी रही। सन् 1891 में लखनऊ से 'बाल हितकर' के प्रकाशन का भी इतिहास मिलता है। 1906 ई0 में अलीगढ़ से बाबू शिवचरण लाल ने 'छात्र हितैषी' और वाराणसी से किशोरीलाल गोस्वामी ने 'बाल प्रभाकर' निकाला।

सन् 1912 में नरसिंहपुर (म0प्र0) से 'मानीटर' और 1914 ई0 में इलाहाबाद से 'विद्यार्थी' का प्रकाशन हुआ। इसी वर्ष मालवा क्षेत्र के आगर से गणेशदत्त शर्मा ने 'बाल मनोरंजन' (मा0) निकाला। यह सभी पत्र बच्चों के ज्ञान और मनोरंजन के क्षेत्र में सार्थक पहल की नीयत से प्रकाशित हुए थे, किन्तु 'विद्यार्थी' और 'बाल मनोरंजन' के अलावा बाल मानस को कोई पत्र विशेष प्रभावित नहीं कर सका।

वास्तव में इस काल खण्ड में वैचारिक जगत में शिक्षाशास्त्री रूसो और जान लाक का बोलबाला था। रूसो बच्चों को अप्रशिक्षित मानव मानता था तो जान लाक की स्थापना में बच्चे का मस्तिष्क कोरा कागज था। बाल साहित्य के नियन्ताओं के अन्दर भी इस दर्शन के प्रति समर्थन का भाव था। फलस्वरूप बच्चों को भविष्य का अच्छा नागरिक बनाने के लिए तथाकथित कोरे कागज पर मनचाही इबारत लिखने का सिलसिला आरम्भ हुआ।

लिहाजा उस समय का ढेर सारा साहित्य पारम्परिक नीति साहित्य और धर्मग्रन्थों से सामग्री लेकर लिखा गया है। यह उपदेश से लबालब और नैतिक मूल्यों से खूब बोझिल है। इसमें बाल जीवन की धड़कनों का नितान्त अभाव है। यह बच्चों के जीवन को सरस बनाने में सफल नहीं हुआ। इसलिए बाल पाठकों ने तो इसे अस्वीकृत किया ही, साहित्य के इतिहास में भी यह नकार दिया गया।

'विद्यार्थी' के सम्पादक रामजी लाल शर्मा और 'बाल मनोरंजन' के सम्पादक गणेशदत्त शर्मा बाल मनोविज्ञान की अत्याधुनिक धारा के समर्थक थे। बच्चों के मन को परखकर लिखे जाने वाले बाल साहित्य विषयक इनकी परिकल्पना परम्परा से अलग थी। इन दोनों पत्रों को तत्कालीन कवि–लेखक मैथिलीशरण गुप्त, रामनरेश त्रिपाठी, कामता प्रसाद गुरु, महेन्द्रनाथ गर्ग, माखनलाल चतुर्वेदी, अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध', चन्द्रमौलि शुक्ल, रामदास गौड़, छविनाथ पाण्डेय से भरपूर लेखन सहयोग प्राप्त हुआ था।

यह पत्र कहानी, कविता, नाटक के अतिरिक्त विविध विषयों के लेख भी प्रकाशित करते थे। सन् 1915 में पं0 सुदर्शनाचार्य ने इलाहाबाद से 'शिशु' मासिक का प्रकाशन करके बाल साहित्य को नई दिशा, गति और ऊर्जा प्रदान किया। 'शिशु' की सम्पादक श्रीमती गोपाल देवी पं0 सुदर्शनाचार्य की पत्नी थीं। यह दोनों प्राणी बाल मनोविज्ञान के निष्णात थे। इनकी मान्यता थी कि हर एक बच्चे में जिज्ञासा, कल्पना, उत्साह, अनुकरण, अभिव्यक्ति (प्रतिक्रिया) और आत्मसम्मान का भाव समान रूप में होता है। इसके अलावा बच्चे कई अलग–अलग जन्मजात विशेषताओं, कुशलताओं, शक्तियों, रुचियों, अभिरुचियों और अभिवृत्तियों को लेकर पैदा होते हैं। शिक्षा और साहित्य के उद्देश्य इनके सकारात्मक गुणों को प्रबलन देना होना चाहिये।

इस प्रकार के स्पष्ट 'विजन' के कारण 'शिशु' शीघ्र ही बच्चों की प्रिय पत्रिका बन गयी। प्रबुद्ध अभिभावकों ने भी इसे सम्मान दिया।

ज्ञान–विज्ञान के विविध लेखों के साथ इसमें आदर्श, सदाचार और राष्ट्रीय भावों की रोचक व प्रेरक रचनायें प्रकाशित की जाती थीं। गोपालशरण सिंह, सुदर्शन, विद्याभूषण 'विभु', सोहनलाल द्विवेदी, निरंकारदेव सेवक, चन्द्रपाल सिंह यादव 'मयंक', शकुन्तला शिरोठिया, श्रीनाथ सिंह, शान्ति मेहरोत्रा की रचनायें इसमें प्रमुखता से छपती थीं। कहा जाता है 'शिशु' ने बाल साहित्य को अंगुली पकड़कर चलना सिखाया।

सन् 1916 में पटना से 'बालक' का प्रकाशन हुआ। इसके सम्पादकों में रामवृक्ष बेनीपुरी और शिवपूजन सहाय जैसे दिग्गज रहे हैं। बाल साहित्य को युगसापेक्ष और लोकप्रिय बनाने में 'बालक' की भूमिका सराहनीय है। इससे बाल साहित्य के अन्दर बच्चों की जिन्दगी के सहज स्पन्दन के प्रस्फुटन का जो सिलसिला शुरू हुआ, उसे सन 1917 में इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद ने 'बाल सखा' मासिक निकालकर आगे बढ़ाया। 'बाल सखा' के बारे में निरंकार देव सेवक ने लिखा है–

''बाल साहित्य के उन्नयन और विकास में उनकी वैसी ही महत्वपूर्ण भूमिका रही है, जैसी बड़ों के साहित्य में 'सरस्वती' मासिक की।'' कामता प्रसाद 'गुरु', गिरिजादत्त शुक्ल 'गिरीश', देवीदत्त शुक्ल, ठा0 श्रीनाथ सिंह, लल्ली प्रसाद पाण्डेय, सोहनलाल द्विवेदी आदि बच्चों के कवि–लेखक इसके सम्पादक रहे। उनमें पं0 लल्ली प्रसाद पाण्डेय का सम्पादन काल सबसे दीर्घ रहा है। उन्होंने इस काल में बाल साहित्य के अनेक नये–पुराने लेखकों को प्रतिष्ठित करने और प्रोत्साहन दे–देकर लिखाने का जो महत्वपूर्ण कार्य किया, उसके कारण हम उन्हें 'बाल साहित्य का पं0 महावीर प्रसाद द्विवेदी' कह सकते हैं।''

सन 1927 में 'खिलौना' (मा0) सम्पादक रामजी लाल शर्मा और सन् 1931 में 'वानर' पं0 रामनरेश त्रिपाठी ने बाल साहित्य को नई ऊँचाइयों तक पहुँचाने के लिए पूरी निष्ठा और समर्पण के साथ प्रयास किया। परिणामतः 'तीतर' श्रीधर पाठक (बाल साहित्य के पहले रचनाकार), 'एक बूँद', 'फूल और कांटा', 'कर्मवीर', 'चन्दा मामा', अयोध्या सिंह

उपाध्याय 'हरिऔध'', 'छड़ी' कामता नाथ 'गुरु', 'छाता' सुखराम चौबे 'गुणाकर', 'हाऊ और बिलाऊ' पं0 सुदर्शनाचार्य, 'झाँसी की रानी', 'सभा का खेल', 'पानी और धूप', सुभद्रा कुमारी चौहान, 'ग्रामश्री', 'घंटा' सुमित्रानन्दन पन्त, 'पुष्प की अभिलाषा', 'ले लो लड्डू' माखनलाल चतुर्वेदी, 'चाँद का कुर्ता', 'कुत्ते की सीख' रामधारी सिंह 'दिनकर', 'तारे', 'चिड़िया का घर' डॉ0 हरिवंशराय बच्चन, 'सरकस' मैथिलीशरण गुप्त, 'लघु सरिता' गोपाल सिंह नेपाली, 'चिड़िया कहाँ रहेगी', 'कोयल' महादेवी वर्मा, 'वीरों का कैसा हो बसन्त' श्याम नारायण पाण्डेय, 'चतुर चित्रकार', 'तिल्ली सि' रामनरेश त्रिपाठी, 'मुन्नी की दवाई' निरंकार देव सेवक जैसी सहज, सुबोध, प्रेरक और रोचक रचनायें बच्चों की जबान पर चढ़ गयी थी।

उस दौर में बाल कवियों–लेखकों प्रेम नारायण गौड़, स्वर्ण सहोदर, रमापति मिश्र, देवी प्रसाद गुप्त 'कुसुमाकर', रामसिंहासन सहाय 'मधुर', द्वारिका प्रसाद माहेश्वरी, शकुन्तला शिरोठिया, डॉ0 श्रीप्रसाद, विष्णुकान्त पाण्डेय, डॉ0 राष्ट्रबन्धु, ठा0 श्रीनाथ सिंह, रामदेव सिंह 'कलाधर' के अन्दर दुर्लभ कोटि की बचपन की समझ थी।

इस समय की पत्रिकाओं में मौलिक कहानियों– 'शेर और लड़का', 'पागल हाथी', 'गुब्बारे पर चीता' (प्रेमचन्द्र), छोटा जादूगर (जयशंकर प्रसाद), 'चकर–मकर की बुढ़िया', 'मौत के सुरंग की कहानी', 'बफाती चाचा' (रामनरेश त्रिपाठी) के साथ–साथ साहसिक अभियान, इतिहास पुरुष, पौराणिक पात्रों, ऋषि परम्परा, कथा सरित्सागर, वृहत्कथा मंजरी, पंचतन्त्र, जातक कथायें, जैन आगम कथाओं, अलिफलैला से तैयार करके कथायें छापी गयीं। विदेशी बाल कथा साहित्य का अनुवाद भी खूब छापा गया था। चार्ल्स स्पैरो, एंडरसन और लुइस कैरोल की परीकथाओं का भारतीयकरण करके भी बाल साहित्य की श्रीवृद्धि का प्रयास किया गया था।

स्वतन्त्रता के बाद बाल साहित्य की उल्लेखनीय अभिवृद्धि हुई। चन्दा मामा, मनमोहन, बाल भारती, नन्दन, पराग, शेरसखा, बाल रंगभूमि,

चम्पक, लोटपोट, मधु मुस्कान, मेला, नन्हे तारे जैसी ढेरों पत्रिकाओं का प्रकाशन होने लगा। सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', अमृतलाल नागर, रामधारी सिंह 'दिनकर', विष्णु प्रभाकर, देवेन्द्र सत्यार्थी, के0पी0 सक्सेना, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना जैसे दिग्गज रचनाकारों के साथ राष्ट्रबन्धु, विनोदचन्द्र पाण्डेय 'विनोद', जयप्रकाश भारती, आनन्द प्रकाश जैन, हरिकृष्ण देवसरे, श्री प्रसाद, देवराज, दिनेश, राधेश्याम 'प्रगल्भ', कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर', अमर गोस्वामी, शंकर सुलतानपुरी, रमेश तैलंग की सक्रियता से बाल साहित्य में गुणात्मकता और मात्रात्मकता के स्तर पर शूब वृद्धि हुई।

कहानी, लेख, कविता, उपन्यास, नाटक, जीवनी, संस्मरण से इतर आज बाल साहित्य, गजल, रेखाचित्र, दोहा, लघुकथा, सानेट, यात्रा वृत्तान्त, नृत्यनाटिका जैसी विधाओं में भी सामने आ रहा **है।**

नेशनल बुक ट्रस्ट, चिल्ड्रेन बुक ट्रस्ट, प्रकाशन विभाग (दिल्ली) और बाल पाकेट बुक्स के माध्यम से निरन्तर बाल साहित्य का प्रकाशन जारी है। नन्दन, बालभारती, बालवाणी, बालवाटिका, देवपुत्र, बच्चों का देश, बाल भास्कर, बालहंस, सुमन सौरभ, चंपक, लोटपोट, हंसती दुनिया, बालप्रहरी, स्नेह, अपना बचपन, चिरैया और बच्चों में वैज्ञानिक दृष्टिकोण विकसित करने वाली पत्रिका 'चकमक' मासिक अब भी बच्चों तक पहुँच रही है। भोपाल से डॉ0 परसुराम शुक्ल, 'समकालीन बाल साहित्य' नामक शोध पत्रिका निकालकर 'बाल साहित्य समीक्षा' (सम्पादक–राष्ट्रबन्धु) की परम्परा को विस्तार देने में लगे हैं। दैनिक समाचारपत्रों– ट्रिब्यून, हरिभूमि, जनसत्ता, पंजाब केसरी, नवभारत टाइम्स, हिन्दुस्तान, लोकमत, राजस्थान पत्रिका में बालसाहित्य के नियमित स्तम्भ हैं। पिछले दिनों राजस्थान साहित्य अकादमी की पत्रिका 'मधुमती' और जम्मू–कश्मीर कला, संस्कृति एवं भाषा अकेडमी की पत्रिका 'शीराजा' के बाल साहित्य पर शानदार विशेषांक आये थे।

इन दोनों पत्रिकाओं में बाल साहित्य के स्तम्भ हैं। हरियााण साहित्य अकादमी की पत्रिका 'हरिगंधा' ने भी 'बाल साहित्य खण्ड' की

घोषणा की है। उत्तर प्रदेश सरकार के जनसम्पर्क विभाग की पत्रिका 'उत्तर प्रदेश' (मा0) और भारत सरकार के सूचना और प्रसारण मंत्रालय से प्रकाशित 'आजकल' (मा0) का नवम्बर अंक 'बचपन और बाल साहित्य' को समर्पित रहता है। नेट पर भी विविधवर्णी बाल साहित्य उपलब्ध हैं। उसके अपने ब्लाग हैं। वह बच्चों के साहित्य की व्यापकता और स्वीकृति का द्योतक है।

'शीराजा' के बाल साहित्य विशेषांक में एक कहानी 'सॉरी लूलू' समायोजित है। यह 'बैडटच' की कहानी है। किशोरवय के यौन आकर्षण पर भगवती प्रसाद द्विवेदी के अतिरिक्त किसी का लिखा नहीं दिखता। इन विषयों पर अभी बहुत कुछ लिखा जाना चाहिये।

बाल साहित्य की कमजोर स्थिति का फायदा उठाकर करीब तीन दशक पहले इस क्षेत्र में कामिक्स की बाढ़ आ गयी थी। यद्यपि इसी दौर में 'अमर चित्रकथा' जैसा बैनर भी सामने आया था, जहाँ से इतिहास, पुराण, महाकाव्य, लोकनायक, क्रान्तिकारी, स्वतन्त्रता सेनानी, वैज्ञानिक, लोककथा और सन्त परम्परा से जुड़ी ढेरों चित्रकथायें प्रकाशित हुई थीं। इस प्रकाशन की प्रत्येक चित्रकथा एक क्लासिक थी। इनमें भारतीय जीवनमूल्यों की कौंध और परम्पराओं की चमक थी। मगर अधिकतर चित्रकथा के प्रकाशकों ने अंधी व्यावसायिकता का प्रदर्शन किया।

यहाँ से हिंसा, चमत्कार, अश्लीलता और मायावी कारनामों से भरे ऐसे कामिक्स छापे गये, जिनकी अतिकाल्पनिकता का कोई ओर–छोर नहीं था। अपने मजबूत प्रसार तन्त्र के बल पर यह चित्रकथायें बच्चों तक पहुँचने में सफल भी हुईं। यह बच्चों के लिए नाशीला साहित्य सिद्ध हुआ और इसके पाठक 'कामिक्स एडिक्ट' बनने लगे थे। निकृष्ट कोटि की इन चित्रकथाओं की तैयार की गयी जमीन अब टीवी चैनलों द्वारा प्रसारित मूल्यहीनता को बढ़ावा देने वाले कार्टून धारावाहिकों ने हथिया ली है।

यह सत्य है कि अभी बाल साहित्य पूर्णरूपेण युग सापेक्ष नहीं हो पाया है, इसलिए बालमन को अपनी तरफ मोड़ने में समर्थ नहीं हो पा रहा है। इसमें बालिकाओं की स्थिति अधिकतर परम्परागत ही है–कमजोर, असुरक्षित, पिछलग्गू और छुई–मुई सी। मनोरमा, जफा और डॉ0 ऊषा यादव ने इस छवि को तोड़ने वाला कुछ लेखन अवश्य किया है।

वैसे कहा जाता है कि बच्चे (लड़कियों सहित) केन्द्रीय चरित्र के रूप में बालिका को नापसन्द करते हैं, मगर कार्टूनिस्ट प्राण की चुलबुली, बाल की खाल निकालने वाली, बातूनी और बुद्धिमान पिंकी पर आधारित चित्रकथाओं की लोकप्रियता ने इस कथन को झूठा सिद्ध कर दिया है। ग्रामीण बालजीवन की उपस्थिति भी बच्चों के साहित्य में अपेक्षाकृत कम है। रोमा जिप्सी, बनजारा, गाड़िया, लोहार जैसी घुमंतू जातियों और दलित संवर्ग के बच्चों को केन्द्र में रखकर बाल साहित्य का सृजन भी नगण्य है। घुमंतू जाति के बच्चों पर श्याम सिंह 'शशि' जैसे इक्का–दुक्का रचनाकारों ने ही लेखन किया है। आदिवासी और श्रमिक बच्चे भी यहाँ हाशिये पर पड़े हैं। बस बाल साहित्य लेखन में निरन्तरता और स्थायित्व से इन्कार नहीं किया जा सकता है। इसके बावजूद भी बाल साहित्य की परम्परा का सशक्त स्वरूप जैसी कोई स्थिति उभरकर सामने नहीं आ पायी है।

कहा जाता है कि इस क्षेत्र में गम्भीर आलोचना का नितान्त अभाव है। इससे यह धारा और कमजोर दिखती है। इसमें कुछ सत्य है तो काफी कुछ दुराग्रह भी है। इधर बच्चों के साहित्य को लेकर गम्भीर विमर्श का दौर चल रहा है। बाल साहित्य के कथ्य, शिल्प, संरचना, भाषा, सम्प्रेषणीयता, बिम्ब विधान, बाल रुचि, पठनीयता, मानसिक परितुष्टि जैसे विषय गोष्ठियों में चर्चा के केन्द्र में रहते हैं। इससे जुड़े चिन्तनपरक आलेखों को वीणा, बहुवचन, आजकल, हिमप्रस्थ, उत्तर प्रदेश, शीराजा, साक्षात्कार, हरिगन्धा, मधुमती, अक्षरा, गिरिराज, साहित्य भारती, सोच विचार, कथा समवेत, अणुव्रत जैसी स्तरीय पत्रिकाओं और देश के शीर्षस्थ अखबारों में भी स्थान मिलने लगा है।

बाल साहित्य के क्षेत्र में डॉ0 श्रीप्रसाद, डॉ0 हरिकृष्ण देवसरे, राष्ट्रबन्धु, मनोहर वर्मा की परम्परा को डॉ0 प्रकाश मनु, योगेन्द्र सिंह भाटी, हुंदराज बलवाणी, शकुन्तला कालरा, देवेन्द्र कुमार, चक्रधर नलिन, बंधु कुशावर्ती, दिविक रमेश, शेषपाल सिंह 'शेष' ऊषा यादव, विनोदचन्द्र पाण्डेय 'विनोद', रामनिवास 'मानव', सुरेन्द्र विक्रम, हेमन्त कुमार, क्षमा शर्मा, अलका आर्य, नागेश पाण्डेय 'संजय', डॉ0 जाकिर अली 'रजनीश', रमेश मयंक, देवेन्द्र अस्थाना, रमेश तैलंग जैसे नये– पुराने रचनाकार विस्तार देने में लगे हैं। सन 1979 बाल वर्ष था। तब सरकारी स्तर पर बाल साहित्य की किताबों की खरीद और वितरण के बजट में आशातीत बढ़ोत्तरी हुई। लिहाजा कुछ दिमागदार लोगों को यहाँ व्यवसाय की सम्भावना दिख गयी। साहित्य में प्रवेश के 'शार्टकट' की तलाश वाले पहले से सक्रिय थे। इसी बीच कुछ ऐसे प्रकाशक भी उभरकर सामने आये, जिनका इस क्षेत्र से कोई वास्ता नहीं था।

इसके पूर्व बालरुचि और बाल मनोभावों को परखकर जिस प्रेरक एवं उद्देश्यपूर्ण साहित्य लेखन का सिलसिला चल रहा था, उससे मुक्त बच्चों के लिए लिखने वालों की यह नई जमात स्वच्छंदतावादियों की थी। बच्चा क्या पढ़ना चाहता है, इससे बेखबर इन रचनाकारों ने तथाकथित शिक्षाप्रद, उपदेश और नैतिक मूल्यों से बोझिल साहित्य का लेखन किया। इनकी करनी से बच्चों का साहित्य फिर वहीं पहुँच गया, जहाँ से बीसवीं सदी के आरम्भ में इसकी सृजन यात्रा शुरू हुई थी।

सरकारी खरीद में अपना माल खपाने की प्रतिभा और कौशल के फलस्वरूप इन रचनाकारों–प्रकाशकों का उत्पाद पुस्तकालयों और प्रदर्शनियों तक पहुँचने में सफल हुआ। हालांकि बाल वर्ष की अनुप्रेरणा स्वरूप स्थापित गीतकार रामानुज त्रिपाठी बाल साहित्य के लेखन में प्रवृत्त हुए और बच्चों के सुरीले कवि के रूप में ख्यात हुए। लोकभूषण आद्याप्रसाद सिंह 'प्रदीप' भी इसी काखण्ड में बाल साहित्य सृजन में प्रवृत्त हुए थे।

इस प्रकार के साहित्य का जो होना था, वही हुआ। इसमें बच्चों की जिज्ञासा को जगाकर अपनी तरफ खींचने का आकर्षण नहीं था। बच्चों की कल्पना को नया आकाश देने और उसे तर्कसम्मत समाधान तक ले जाने की क्षमता के मामले में भी यह अत्यन्त फिसड्डी साबित हुआ। बाल सुलभ जिज्ञासाओं को शान्त करने का गुण भी इनमें नहीं था। बच्चों को कुछ नया जानने–सीखने का अवसर भी इससे न मिला। अपनी जड़ता से इस साहित्य से बच्चों में अरुचि पैदा किया और 'बचकाना साहित्य' का उत्स बना।

सरकार प्रतिवर्ष लाखों रुपये का बाल साहित्य क्रय करती है, उसमें काफी कुछ स्तरीय भी होता है। मगर वितरण व्यवस्था की सीढ़ी–दर–सीढ़ी चलता हुआ, कुछ तो सरकारी गोदामों में दीमक का आहार बन जाता है। शेष स्कूल, कालेज और पुस्तकालय तक पहुँचकर आलमारी में कैद हो जाता है। विशेषकर प्राथमिक और उच्च प्राथमिक विद्यालय के बच्चे शायद ही इन पुस्तकों का दर्शन कर पाते हों।

जबकि इन विद्यालयों में पढ़ने वाले बच्चों की वयवर्ग की सीमा ही अध्ययनशीलता के संस्कार के विकास की नींव होती है। इसी दृष्टि के तहत सर्व शिक्षा अभियान के अन्तर्गत विद्यालयों में पुस्तकालयों को सक्रिय करने की मुहिम भी चलायी जा रही है, किन्तु जागरूकता व सशक्त नीतियों के अभाव में यह सिर्फ कागजी मुहिम बनकर रह गयी है। बाल साहित्य के कुछ धुँधले पक्ष हैं तो कुछ लकदल और चमकीले भी हैं।

आज की तारीख में बाल साहित्य के लेखन में एक साथ कई पीढ़ियाँ सक्रिय हैं। अश्विनी कुमार पाठक, रत्नप्रकाश 'शील', विलास बिहारी, जगदीशचन्द्र शर्मा, राजा चौरसिया, भैरूलाल गर्ग के साथ–साथ भगवती प्रसाद गौतम, रमेश मयंक, डॉ0 प्रकाश मनु, देवेन्द्र कुमार, डॉ0 सुनीता, उॉ0 शकुन्तला कालरा, रमेश तैलंग, डॉ0 ऊषा यादव, आद्याप्रसाद सिंह 'प्रदीप' मुरलीधर वैष्णव, तारादत्त निर्विरोध, बानो सरताज, बालस्वरूप राही की सक्रिय भागीदारी है।

इसके अगले क्रम में रोहिताश्व अस्थाना, कमलेश भट्ट 'कमल', रमेशचन्द्र पन्त, ओमप्रकाश कश्यप शादाब आलम, रावेन्द्र कुमार 'रवि', सुरेन्द्र विक्रम, डॉ0 फहीम, मो0 साजिद खान, मो0 अरशद खान, श्यामनारायण श्रीवास्तव, नेहा वैद्य, सृष्टि पाण्डेय और साक्षी शुक्ला अपने कथ्य की नवीनता, चित्रात्मक व खिलंदड़ी भाषा और कलात्मक संयम से बाल साहित्य के उज्ज्वल भविष्य के प्रति आश्वस्त करते हैं।

यह भी गौरतलब है कि व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास में शिक्षा के साथ–साथ बाल साहित्य का भी महत्वपूर्ण स्थान होता है। यह तथ्य अब प्रबुद्ध लोगों की सोच में शामिल हो रहा है। इसलिय बच्चों के साहित्य के परिप्रेक्ष्य में गम्भीर माहौल बन रहा है। अभी इन्दौर में एक भव्य बाल साहित्य सृजन एवं शोध पीठ की स्थापना हुई है। भोपाल, अल्मोड़ा, कानपुर और शाहजहाँपुर में भी ऐसी ही पीठ की स्थापना के प्रयास चल रहे हैं।

भविष्य में केन्द्रीय एवं प्रादेशिक बाल साहित्य अकादमियों का गठन भी प्रस्तावित है। राजस्थान में बाल साहित्य अकादमी अस्तित्व में आ चुकी है। इन प्रयासों का निस्तारण भविष्य में बच्चों के साहित्य के लिए अच्छे दिन लायेगा। इसके पश्चात न स्तरीय साहित्य को बच्चों तक पहुँचाने के कारगर नेटवर्क का अभाव होगा और न ही टीवी कम्प्यूटर, इंटरनेट की चमक–दमक की दुनिया में खोए बचपन को पुस्तकों की दिशा में मोड़ना ही मुश्किल भरा काम रह जायेगा।

०००

साहित्य सृजन और समालोचना का पारस्परिक संबंध

-डॉ. अशोक कुमार 'मंगलेश'

सृजन संवेदनशील मनुष्य की वृत्ति है , जो अनायास ही प्रस्फुटित हो फलक पर उभरती है। बस , सृजन के लिए चाहिए एक सुखद वातावरण और आनंद उत्पन्न करने वाली शक्तियाँ , जिसमें सुगंधित बयार की फुआरें , लहलाती हरियल धरा , झुरमुट में चर चराते वृक्षों पर पक्षियों की चहचहाट और सृजक की साधकीय तपस्या में लीनता के भावों का उमड़ना-घुमड़ना। साथ ही साहित्य सृजन के लिए सृजक अथवा रचनाकार में कुछ विशेष योग्यताओं का होना भी आवश्यक है।

प्रथमतः रचनाकार का अनुभव और अनुभूतियों का एकाकार होना, संवेदनशीलता जो अनुभूत संवेदनाओं से तटस्थ होकर यथार्थपरक सत्य का उद्घाटन करें तथा अभिव्यक्ति जो सृजन को सार्थक , सशक्त, प्रामाणिक और युग सापेक्ष बनाकर , भाषा-शिल्प से अलंकृत करना है। अंतिम योग्यता में रचनाकार का स्वतंत्र - वेता होना आवश्यक है , जो साहित्य सृजन और साहित्यालोचन की पहली शर्त है।

समकालीन हिंदी कथा साहित्य अथवा वर्तमान की परिवर्तित नवचेतना की प्रतिनिधि रचनाकार चित्रा मुद्गल के शब्दों में , "लेखक

अपने आप में होता ही क्या है , सिवा रिसती एक अनुभूति के। ऐसी अनुभूति, जो अपने आसपास बिखरी करोड़ों-करोड़ों जिंदगी की तमाम अनुभूतियों के रिसाव को अपने भीतर समेटने और समेटकर उनकी पीड़ा को अपनी साँसें बनाने के लिए अभिशप्त है। जब तक लेखक जनभय नहीं होता, उसके संघर्षों में उसका विलय नहीं होता, वह लेखक नहीं होता । .... जिसकी कलम दुनिया-भर की व्यथा अपनी सियाही में समेट लेती है.... सच्चा साहित्यकार साधक इसे ही तो कहते हैं"

अभिव्यक्ति के संदर्भ में डॉ० विमल कुमार ने लिखा है , " वास्तविकता यह है कि रचनाकार के संपूर्ण व्यक्तित्व , मनोविकास, सारस्वत सिद्धि और सांस्कृतिक संपन्नता का प्रभाव उसकी रचना प्रक्रिया पर रहता है। " सुप्रसिद्ध कहानीकार साहित्यकार कमलेश्वर के कथनानुसार, "यदि लेखक अपने समय के सवालों से नहीं जुझ सकता है , जिरह नहीं कर सकता तो वह लेखक नहीं है।..... समय संगत जिरह 1....समय ही लेखक को लेखक बनाती है। अगर लेखक अपने समय और अपने मन पर पड़ती समय की छाया के समय रचनात्मक जिरह नहीं कर सकता तो उसके बेमानी और थके हुए शब्द खुद अपनी ऊर्जा से स्खलित हो जाते हैं।"

अतः रचनाकार ऐसा हो जिसको जानना तो सहज हो , किंतु समझना कठिन । हाँ , भावों में अनेकाधिक गुणों का समवेत अवश्य हो , यथा-ममता, स्नेह, वात्सल्य, प्यार, प्रेम, करुणा, आनंद, सौंदर्य प्रतिभा, ऊर्जा, स्फूर्ति, उद्भावना, सदाचार, ओजस्विता, तेजस्विता तथा प्रखरता आदि में सक्षम हो। कथनी और करनी को समभाव से जीने वाला हो। समकालीन साहित्यकारों के अतिरिक्त विगत लेखकों के साहित्य का अध्ययन करने वाला भी हो।

साहित्यिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक, पारिवारिक, आर्थिक, तथा धार्मिक परिवेश आदि जिस प्रकार रचनाकार के रचना क्रम

को प्रभावित करते हैं , ऐसे ही रचनाकार का जीवनानुभव भी साहित्य सृजन की प्रेरणा का खोता बनता है। चूँकि उसके चेतन और अवचेतन मानस में अंत चलता रहता है। वस्तुतः जिनकी रचनाओं में मानव मन की संवेदनाओं की गहन अभिव्यक्ति होती है , वह सफल रचनाकार माना जाता है। वरिष्ठ आलोचक डॉ० करुणा शर्मा लिखती हैं, " साहित्य मनुष्य के मनोविज्ञान की तहाँ के भीतर उतरकर उसके संवेदन के स्रोतों का खनन करता है , उसकी जटिल गाँठों को खोलकर उसे स्वयं में झाँकने-समझने का अवसर प्रदान करता है। फलस्वरूप उसके चेतन और अवचेतना में संघर्ष और अंतर्द्वंद्व चलता रहता है। रचनाकार आम आदमी की इस मनःस्थिति को भलीभाँति जाँच-परखकर अपने साहित्य में उजागर करता है।"

साहित्य-सृजन के बाद यदि उस पर प्रकाश न पड़े, उसे आलोकित न करें तो वह सारा सृजन अंधकार के गर्त में छिपा रहेगा। आलोचना रूपी इस प्रकाश से ही सृजन में विलक्षणता , सौंदर्यता और आनंदानुभूति उत्पन्न करने वाली शक्तियाँ आती हैं। बिना आलोचना अथवा समालोचना के सृजन के गुण अथवा दोषों का तथा विविध स्वरूपों का स्पष्टीकरण नहीं हो पाता है।

'साहित्य समालोचना' नामक पुस्तक में रचयिता ने ठीक ही लिखा है, “समालोचना साहित्य में सौंदर्य का अस्तित्व खोज निकालती है, उसमें गूढ़तम भावनाओं अथवा विचारों का पता लगा लेती है। कौन-सा मणि कहाँ है , किस मोती का क्या स्थान है , साहित्य-सागर में समालोचना यही ढूँढ़ निकालती है। बिना समालोचना के साहित्य में जान नहीं आती, साहित्य एक प्रकार से प्राण शून्य-सा रहता है। ” साहित्य में समालोचना एक बहुत महत्वपूर्ण अंग है। फिर भी इस पर बहुत कम चिंतकों तथा विचारकों ने काम किया है और यही कारण है कि साहित्य की यह विधा बहुत पिछड़ी हुई है।

यह बात अलग है जिस प्रकार हिंदी कविता परिवर्तन-क्रम से नहीं बची, उसके रूप में परिवर्तन हुआ है। ठीक ऐसे ही समालोचना-क्रम भी परिष्कृत होता रहा है , किंतु वास्तविक समालोचना का रूप अभी तक निश्चित नहीं हुआ, यह एक खेद की बात है। वर्तमान समालोचक विषय पर केवल साधारण ज्ञान रखते हैं। कतिपय समालोचकों को छोड़कर , बहुधा साहित्य-समालोचक ज्ञान रखते हैं विज्ञान का और समीक्षा लिखते हैं हिंदी साहित्य की। जिस व्यक्ति ने जिस विषय का विशेष अध्ययन किया है, उसे उसी विषय का मूल्यांकन , अन्वेषण अथवा विवेचन करना चाहिए। समीक्षक या आलोच्य विषय का प्रकांड ज्ञान होने पर ही उसकी आलोचना होनी चाहिए , तभी सच्ची समालोचना मानी जाएगी। यहाँ साहित्यालोचना के कुछ आवश्यक तत्वों पर चर्चा करना अत्यावश्यक है।

आलोचना में पहली बात है-निष्पक्षता , वर्तमान में आमतौर पर मित्र-भाव के कारण आलोचक अपनी पहली शर्त को ही भूल जाता है। यदि रचनाकार ने अपने सृजन में उद्देश्य को प्राप्त किया है तो धन्यवाद अवश्य बनता है, अन्यथा सीधे शब्दों में कह देना चाहिए। इसलिए मित्र-भाव के कारण असफल सृजन को कभी उच्च स्थान नहीं देना चाहिए और शत्रुभाव के कारण एक अच्छे लेखक अथवा रचना को नीचा भी नहीं दिखाना चाहिए। अरनाल्ड ने अपने ऐसेज़ इन क्रिटिसिजम में 'पर्सनल फैमिली' कहकर पुकारा है। रचनाकार की प्रशंसा न कर , रचना की प्रशंसा होनी चाहिए। तभी हम अच्छे साहित्यकार का निर्माण कर सकते हैं।

आलोचना साहित्य से अलग नहीं होती, वह भी साहित्य की श्रेणी में ही आती है। लेखक रचना कर निर्माण करता है तो आलोचक उसका अनुसंधान कर व्याख्या करता है। आलोचक का चिंतन मनन जितना गहन होगा, वह सृजन के सागर से उतने ही अधिक हीरे-मोती निकालेगा। इसके लिए आवश्यक है कि आलोचक समूची परंपरा से जुड़कर नवोन्मेषकारी भूमिका निभाए।

कवि एवं विचारक , टी०एस० ईलियट ने कहा है , "साहित्यकार अपने साहित्य में समूची साहित्यिक परंपरा को साथ लिए चलता है और उसी प्रकार समालोचक भी साहित्यिक परंपरा से अनभिज्ञ होकर किसी भी कृति की समालोचना के साथ न्याय नहीं कर सकता है।"

एक आलोचक का सहृदयी होना आवश्यक है, चूँकि वह रचनाकार और पाठक के बीच एक सेतु का कार्य करता है। इस प्रकार आलोचक और रचना के बीच कोई विभेदन रेखा नहीं खींची जा सकती है। इस संबंध में कवि- समालोचक 'गरते' का कहना सही है , "आलोचना का संसार कविता का विरोधी या उसका विलोम नहीं या उसका प्रतिद्वंद्वी नहीं, बल्कि वह कविता से लगा हुआ एक समानांतर संसार है। यह दोनों संसार अपनी-अपनी जगह पर स्वतंत्र सर्वप्रभुता संपन्न संसार हैं और दोनों के बीच मित्रता की संधि है। दोनों की एक-दूसरे के हितों में आपसी जिम्मेदारी है।"

रचनाकार अपनी रचना में जीवन के अनुभूत सत्यों को उद्घाटित करता है तो आलोचक अनुस्यूत तत्वों पर गहन चिंतन-मनन कर उसकी समीक्षा या मूल्यांकन करता है। अतः 'साहित्य में जहाँ राग तत्व है वहीं आलोचना में बुद्धि तत्त्व रहता है।' डॉ० श्यमासुंदर दास ने आलोचना की परिभाषा करते हुए कहा है , "यदि हम साहित्य को जीवन की व्याख्या मानते हैं तो आलोचना को उस व्याख्या की व्याख्या मानना होगा।"

इस प्रकार एक आलोचक में किसी दक्ष वैद्य की तरह , साहित्य की नब्ज़ को देखकर निदान सुझाने की योग्यता होनी चाहिए। इसके लिए जरूरी है कि आलोचक में समय की परख , निर्णय क्षमता और अभिव्यक्ति कौशल भरपूर हो। साथ ही समालोचक तटस्थ , निष्पक्ष और पूर्वाग्रहों से युक्त हो ।

साहित्य और आलोचना में निकट का संबंध है। इस संबंध में लेखिका एवं आलोचक संतोष खन्ना अपनी पुस्तक 'समालोचना के स्वर' में लिखती है , "समालोचना के सिद्धांतों की निर्मित में साहित्य का स्वरूप बहुत बड़ा कारक होता है। वस्तुत: साहित्य की भीति पर ही आलोचना का अस्तित्व निर्भर करता है क्योंकि साहित्य और समालोचना का चोली-दामन-सा संबंध होता है। जहाँ साहित्य है वहीं किन्हीं-न-किन्हीं सिद्धांतों को साथ लिए समालोचना अग्रसारित होती है। "

आलोचक को प्राचीन और नवीन, पाश्चात्य और पौरस्त्य सभी के प्रति श्रद्धापूर्वक होना चाहिए। इसके लिए व्यापक अध्ययन अपेक्षित है। भाषा स्फीत और मंजी हुई हो , वह विचार के भार से दबी हुई अथवा चिंतन की जटिलता से उलझी हुई नहीं होनी चाहिए।

अत: साहित्यालोचन की एक सूत्रीय परिभाषा दें तो कह सकते हैं कि किसी भी कालजयी रचना की आलोचना पुनः पुर्नपाठ की दरकार करती है, जिसमें आज की उद्भावनाएँ और स्थापनाएँ हो, जिसमें नयापन और भावी आलोचकों के लिए प्रेरक तथा पुर्नव्याख्या और पुनर्विश्लेषण की गुंजाइश के साथ ताजापन हो ।

इसके विपरीत आलोचना के संदर्भ में आज के आलोचक की बात करें तो 'हिंदी आलोचना समकालीन परिदृश्य ' पुस्तक की भूमिका में वरिष्ठ आलोचक कृष्णदत्त पालीवाल का कथन संगत नजर आता है, आज आलोचक मालिक के दरवाजे का 'कुता' है जिसके भौंकने में मात्र स्वामी भक्ति की व्यंजकता शेष रह गई है। आलोचक का काम किसी कृति की संवेदना को जोरावरी खींचकर पाठक तक पहुँचना नहीं रह गया , वह मात्र कृति को चखने-चहकने-प्रचार करने वाला ठलुआ व्यक्ति रह गया है।"

वस्तुतः समालोचना शब्द आज दो अर्थों में प्रयुक्त होता है। प्रथम, जो समालोचनाएँ स्वतंत्र ग्रंथ के रूप में एक आकार के साथ

प्रस्तुत की जाती हैं और द्वितीय प्रकार की समालोचनाएँ वे हैं , जो पत्र-पत्रिकाओं में पुस्तक परिचय आदि के रूप में प्रकाशित होती हैं। जबकि 'समालोचना' किसी रचना की सम्यक् आलोचना करने की प्रक्रिया है जिसमें अज्ञात की खोज , अज्ञात तथ्यों का आख्यान तथा सत्यों की प्राप्ति और उन सत्यों की खोज का विश्लेषण , जिसमें ज्ञान- सीमा का निर्दोष विस्तार हो।

समोलचना हमें किसी एक रचना या रचनाकार के कृतित्व से परिचित करा सकती है अथवा समालोचना में हम किसी कृति का ज्ञान प्राप्त कर सकते। समालोचना जिन तथ्यों की, की जाती है, वह अपने में पूर्ण होने पर भी अपूर्ण होते हैं। चूँकि समालोचक कृति के विषय-विस्तार और निहित रचना शक्ति के संबंध में अपनी व्याख्याएँ या टीका-टिप्पणियाँ देता है , अत: समालोचक को अपने निर्णयों के प्रति आग्रह होता है उसे अपनी विचार-प्रक्रिया के प्रत्येक चरण की परीक्षा में सफल होना पड़ता है तथा सर्वत्र तार्किकता की रक्षा भी करनी पड़ती है।

समालोचक रचना में मिलने वाले प्रमाणों को स्वीकारते हुए अपने निष्कर्षों को परिमार्जित करता है , वह इस सबके लिए न तो प्रतिबद्ध होता है, न बाध्य ही। वह रचना और रचनाकार को अपनी दृष्टि से देखने के लिए स्वतंत्र होता है। इस प्रकार समालोचक की रचना-प्रक्रिया कृति के पठन के बाद दिमाग में उतर जाने वाली प्रतिक्रियाओं से आरंभ होती है। कृति के उपजे सभी प्रश्नों के विस्तार तक जाने की समालोचक को आवश्यकता नहीं होती। वह तो अपना एक मानदंड बना लेता है और उसी से हर प्रकार की कृति का मूल्यांकन करता चलता है। हाँ , समालोचना में समालोचक के ज्ञान, रुचियों और पूर्वागत मान्यताओं का प्रभाव कृति पर अवश्य पड़ता है।

इसी कारण समालोचक को डॉ० नगेंद्र ने एक अभिसृष्टा कहा है। यथा-तुलसीदास ने जो कुछ लिखा, उसकी समालोचना करते समय आचार्य

रामचंद्र शुक्ल ने अपनी ओर से बहुत कुछ मिला दिया तथा प्रगतिवादी समीक्षकों ने जब तुलसी के कृतित्व की समीक्षा की , तो उन्होंने उसमें से बहुत कुछ घटा दिया। वर्तमान में हिंदी साहित्य में समालोचना की पक्षपात पूर्ण पद्धति चल रही है , जहाँ वस्तु-परकता को स्थान नहीं मिलता। आज समालोचक की कार्य-पद्धति में आत्म-परकता अधिक है , जिसके कारण निष्पक्षता का अभाव ही रहता है। निष्कर्षतः समालोचक के लिए निरीक्षण-विवेचन की अपेक्षा रहती है तथा प्रतिभा , ज्ञान, है रुचि और अध्ययन के समान तत्त्वों का होना आवश्यक है।

इसलिए समालोचक को हर स्थिति में रचना के विवेचन-विश्लेषण के समय रचनाकार की भाषिक- संरचना , जीवनानुभूति और जीवन-दर्शन से टकराना पड़ेगा और विवेचन-क्रम में रचना के मूल स्रोत तक घुसना पड़ेगा। समालोचक को यह भी भुलने की आवश्यकता नहीं है कि आलोचना रचना का मूल्यांकन मात्र है , अतएव मूल्यांकन करते समय समालोचक को रचनाकार की संवेदना का सहगामी भी बनना पड़ता है। समालोचक रचना-रचनाकार और पाठक के बीच संबंध सेतु का कार्य करता है।

इस त्रिवेणी संबंध-सेतु के साथ हुई सह-अस्तित्व के अभाव में समालोचक कभी भी अपने उद्देश्य तक नहीं पहुँच सकता। 'रचना और आलोचना की प्रतिस्पर्द्धा' लेख में लिखा है, "हर सर्जक में एक आलोचक विद्यमान है और हर आलोचक में एक सर्जक । सर्जक में उपस्थित आलोचक रचना को अनुभव की तार्किक परिणति प्रदान करता है और आलोचक में उपस्थित सर्जक उसे रचना के तह तक ले जाता है; समझने की अंतदृष्टि प्रदान करता है। .... आलोचना इसलिए महत्वपूर्ण है कि वह मात्र कृति की शल्य-चिकित्सा नहीं , ऐसा रचनात्मक प्रयास है जो रचना के समानांतर चलता है उसके पूरक रूप में कार्य करता है। " समालोचक

का काम एक ऐसा पथ बनाना है कि पाठक उन तक पहुँच सके यह तभी संभव है जब वह रचना को हृदयगम करे।

आज रचना ही नहीं , आलोचना के भी शुद्धीकरण की बात चल रही है। रचना और आलोचना की अस्वस्थ प्रतिस्पर्द्धा विलगाव का कारण है। हमारे सर्जक और आलोचक इस पर विचार करें। चूँकि दूसरे को समझने के लिए अपने को समझना जरूरी होता है , यह बात सर्जक और आलोचक दोनों पर लागू होती है। साहित्य को समझने और आत्मसात करने से उत्पन्न बाधाओं को दूर करने का यही सहयोगी प्रयास कुछ सुगम कर देगा।

यदि हम हिंदी की सामयिक आलोचना की बात करें तो पश्चिमी 'वादों' और 'आंदोलनों' की पारिभाषिक शब्दावली को बिना सोचे-समझे हमारे समालोचकों द्वारा अपना लेने का नतीजा हिंदी आलोचना में यह हुआ है कि समग्र आलोचनात्मक विवेक को खोकर आलोचक भाषा के जंगल में खो गया है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने आई०ए० रिचडर्स का हवाला देते हुए कहा, "विशुद्ध आलोचना के क्षेत्र में भाषा की क्रीड़ा किस प्रकार बाधक हुई है , कुछ बंधे हुए शब्द और वाक्य किस प्रकार विचारों को रोक रहे हैं, ऐसी बातें जिनकी सत्ता नहीं, किस प्रकार घने वाग्जाल के भीतर से भूत बनकर झाँकती रही है , यह दिखाते हुए बीसवीं शताब्दी के एक आलोचक ने बड़ी खिन्नता प्रकट की है।"

वस्तुत: समालोचक का हवाई होना और विचारशीलता का ह्रास होना, दोनों ने जगह बना ली है। डॉ० रामस्वरूप चतुर्वेदी ने कहा है , “आलोचना की भाषा पर पत्रकारिता की भाषा का प्रभाव बढ़ गया है। फलत: उसमें विश्लेषण की गहराई का स्थान 'वक्तृत्व' और 'अतिनाटकीयता' ने ले लिया है। "

साहित्य-सृजन के क्षेत्र में समालोचक का अप्रत्यक्ष किंतु महत्वपूर्ण योगदान होता है। रचना के सार्थक एवं निष्पक्षीय विश्लेषण द्वारा साहित्यिक अराजकता पर नियंत्रण कर सद्साहित्य को प्रचारित-प्रसारित करने का कार्य समालोचक ही कर सकता है। समालोचना ही साहित्य का वह माध्यम है। जिसके द्वारा समाज की साहित्यिक रुचि का संशोधन और परिमार्जन होता है।

समालोचक रचना को एक व्यापक परिदृश्य में देखने के लिए एक ऐसी समन्वित दृष्टि अथवा फलक विकसित करता है जो साहित्य के बाहरी और आंतरिक संरचनात्मक स्वरूप को उभारता है। जिस तरह रचना आलोचना को उत्तेजित करती है, उसी तरह आलोचना भी रचना को आत्मसात् किए बिना सफल नहीं हो सकती है। ऐसा ही एक प्रयास डॉ . 'मंगलेश' की आलोच्य पुस्तक 'साहित्य सृजन और साहित्यालोचन ' में किया गया है जो रचना के प्रति पाठक की उत्कंठा जाग्रत कर, उसे रचना की ओर अग्रेषित करेगी।

जहाँ तक अध्ययन का प्रश्न है, पूरी तल्लीनता से एक स्वनिर्मित अनुशासन है जिसे समग्र समालोचनाओं में पालन किया जाना चाहिए है। रचनाकार के भाषिक पक्ष पर सूक्ष्म विचार करते हुए उसके आधार खोजे। अतः आलोचक विभिन्न विधाओं पर आलोचना के साहित्य सृजन और समालोचना की समझ को लिए हुए हो जिसमें साहित्य की लेखकीय पहचान और प्रासंगिकता जैसे प्रश्नों को अपने ढंग से समझाने और संवारने का प्रयास किया जा सके। मूल्यांकन के साथ-साथ अन्वेषणात्मक पद्धति का प्रयोग किया जाना चाहिए।

मेरा मानना है कि किसी भी विधा की समझ का विकास और विस्तार सैद्धांतिक या अकादमिक बहसों से उतना नहीं होता, जितना उस विधा में काम करने वालों की रचनात्मकता के विश्लेषण से होता है। समीक्षाएँ अनुसंधानपरक अथवा शोधपरक समीक्षा पद्धति का अनुसरण

करें तथा तुलनात्मक अध्ययन पर बल देती हुई हों। वैसे आज नई-नई साहित्यिक विधाएँ एवं नित-प्रति परिवर्तनशील समाज के साथ-साथ परिवर्तित होते साहित्य को नित नवोन्मेषकारी समीक्षा पद्धतियों के माध्यम से साहित्य को उजागर कर पाठक के लिए सर्वग्राह्य बनाने का प्रयास भी किया जा रहा है, जिसके प्रभाव से येन-केन-प्रकारेण किसी भी आलोचक को अछूता नहीं पाता हूँ।

ooo

प्रियप्रवास की राधा: एक अवलोकन

-यशपाल निर्मल

भाषा मनुष्य के भावों, विचारों की अभिव्यक्ति का प्रमुख साधन है। हिन्दी भाषा का क्षेत्र बहुत ही व्यापक है। इसके अंतर्गत कई बोलियां और उप-भाषाएं आती हैं। 18वीं शताब्दी तक ब्रज भाषा साहित्य की भाषा के तौर पर सर्व मान्य थी। 19वीं शताब्दी में खड़ी बोली का म्हत्व बढ़ गया। महत्वाकांक्षी कवि अयोध्या सिंह हरिऔध भी इस ओर उन्मुक्त हुए और उन्होंने खड़ी बोली का सर्व प्रथम महाकाव्य "प्रियप्रवास" लिखा।

बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध के खड़ी बोली के महा कवियों में हरिऔध जी का महत्वपूर्ण स्थान है। हरिऔध जी ने काव्य, उपन्यास, नाटक, निबन्ध आदि विविध विधाओं में अपनी प्रतिभा का लोहा मनवाया है। प्रियप्रवास नाम महाकाव्य लिखकर हरिऔध जी ने बीसवीं शताब्दी के खड़ी बोली के महाकाव्यकारों में स्थान प्राप्त किया।

प्रियप्रवास में युग की आवश्यकता के मुताबिक कृष्ण एक लोक रक्षक नेता के रूप में तथा राधा एक समाजसेविका के रूप में चित्रित और प्रतिष्ठित हुई है। यही इस महाकाव्य की सफलता का कारण भी है। राधा और कृष्ण का परंपरागत प्रेमी-प्रेमिका वाला रूप प्रिय प्रवास में देखने को नहीं मिलता।

कृष्ण की तरह ही राधा भी इस महाकाव्य की प्रमुख पात्र है। विभिन्न भाषाओं की लोककथाओं एवं लोकगीतों में कृष्ण की प्रेयसी के रूप में राधा का वर्णन अत्यंत प्राचीनकाल से होता आ रहा है। हरिऔध की कृति प्रियप्रवास में राधा का चरित्र भक्तिकाल और रीतिकाल की राधा से बिल्कुल भिन्न है।

प्रियप्रवास की राधा हरिऔध जी की एक ऐसी अभिनव सृष्टि है जो हृदय में कृष्ण प्रेम को धारण किए हुए कर्त्तव्य के दुर्गम एवं पुनीत पथ पर अग्रसर है। कृष्ण प्रेम को वह विश्व प्रेम में रूपांतरत कर देती है और जन कल्याण हेतु किए जाने वाले कार्यों में निरस्त हो जाती है। राधा का यह स्वरूप युगीन आवश्यकताओं के अनुरूप था। इसमें राधा को प्रणयिनी, वियोगिनी एवं लोक-सेविका तीनों रूपों में प्रस्तुत करने में कवि को सफलता मिली है।

प्रियप्रवास की राधा अनुपम लावण्यमयी है। उसके सौंदर्य का वर्णन करते हुए हरिऔध जी लिखते हैं-

" शोभावारिधि की अमूल्यमणि सी लावण्य लीलामयी।
श्रीराधा मृदुभाषिणी मृगदृगीमाधुर्य की मूर्ति थीं।।"

शैशव के सहचर्य ने ही यौवन आने पर प्रणयिनी की सृष्टि करदी है। किन्तु कृष्ण के सविधिवरण की कामना पूरी नहीं हो सकी। कृष्ण मथुरा चले गए। विरह मन की पीड़ा जब असहनीय हो जाती है तो राधा इसे भाग्य का लिखा मानकर अपने दुख में भी दूसरे प्राणियें के कल्याण की कामना करती है। अपनी अंतरंग सखी के सामने प्रणय भावना को प्रकट करते हुए प्रियप्रवास की राधा कहती है-

"हृदय चरण तो मैं चढ़ा ही चुकी हूं।
सविधिवरण की थी कामना और मेरी।
पर सफल हम से है न होती दिखती।
वह कब टलता है भाल में जो लिखा है।।"

प्रियप्रवास की राधा कर्त्तव्य की प्रतिमूर्ति है। उसके नयनों में कृष्ण के दर्शनों की अदम्य लालसा है। परन्तु उद्धव के मुख से यह सुनकर कि कृष्ण मथुरा में लोकोपकारी कार्यों में लीन होने के कारण ब्रज आने में असमर्थ हैं , राधा अपनी लालसा को कर्त्तव्य की बलि वेदी पर न्यौच्छावर कर देती है-

"प्यारे जीवें जगहित करेंगे चाहे न आवें।"

कृष्ण ने उद्धव के माध्यम से राधा को जो लोक सेवा का संदेश भेजा था राधा ने उसे श्रद्धापूर्वक स्वीकार किया-

"जी से प्यारा जगत-हित औलोक–सेवा जिसे है।
प्यारी सच्ची अवनि–तल में आत्मत्यागी वही है।"

प्रियप्रवास में चित्रित राधा अपने दिव्य गुणों के कारण संपूर्ण ब्रज में देवी के समान पूजी जाने लगी। राधा के लोकोपकारी स्वरूप का वर्णन हरिऔध जी ने इस प्रकार किया है-

"वे छाया थीं सृजन–शिरा की शासिका थीं खलों की।
कंगालों की परम-निधि थीं, औषधि पीड़ितों की।
दीनों की थीं भगनि, जनानी थीं अनाथाश्रितों की।
आराध्या थीं ब्रज–अवनि की, प्रेमिका विश्व की थीं।"

उपर्युक्त विवेचन करने पर हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि प्रियप्रवास की राधा एक आदर्शवादी पात्र के रूप में चित्रित हुई हैं। हरिऔध जी की राधा उनकी अभिनव सृष्टि तो है ही युगीन आवश्यकताओं की पूर्ति भी थी। प्रियप्रवास की राधा हरिऔध जी की मौलिक सृश्टि है और उनका चरित्र पूर्व में चित्रित राधा के चरित्र से बिल्कुल भिन्न है।

ooo

शीराज़ा हिन्दी (द्विमासिक) लेखकों से अनुरोध

1. शीराज़ा हिन्दी में छपने के लिए भेजी जाने वाली सामग्री यथासंभव सरल और सुबोध होनी चाहिए। रचनाएँ प्रायः कृति देव 10 फांट में टंकित रूप में भेजी जाएँ। रचनाओं के साथ मौलिक एवं अप्रकाशित होने का प्रमाण पत्र भी भेजने का कष्ट करें।
2. अनुवाद तथा लिप्यंतरण के साथ मूल लेखक की अनुमति भेजना अनिवार्य है। इससे रचना पर निर्णय लेने में हमें सुविधा होगी। मूल कविता का लिप्यंतरण टंकित होने पर उसकी वर्तनी संबंधी त्रुटियाँ प्रायः नहीं होंगी , अतः टंकित लिप्यंतरण ही अपेक्षित है। रचना में अपना नाम , पता, मोबाइल नंबर और ई मेल भी देने का कष्ट करें।
3. सामग्री के प्रकाशन विषय में संपादक का निर्णय अंतिम माना जाएगा।
4. रचनाओं की अस्वीकृति के संबंध में अलग से कोई पत्राचार कर पाना हमारे लिए संभव नहीं है।
5. समीक्षार्थ पुस्तकों की दो प्रतियाँ भेजी जानी चाहिए।

पत्र व्यवहार का पता

संपादक

शीराज़ा हिंदी,

जे. एंड के. अकैडमी ऑफ आर्ट, कल्चर एंड लैंग्वेजिज़

कैनाल रोड, जम्मू 181202 , जम्मू व कश्मीर

ई मेल – trcjkaacl@gmail.com

PUBLISHED BY THE SECRETARY
J&K ACADEMY OF ART, CULTURE AND LANGUAGES, JAMMU
PRINTED AT GOVERNMENT RANBIR PRESS, JAMMU